ओ३म्

गौ की गुहार

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

ओ३म्

गौ की गुहार

ऋषि दयानन्दकृत गोकरुणानिधि की विस्तृत व्याख्या

व्याख्याकार :

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

ब्यानिया पाड़ा, हिण्डौन सिटी–३२२ २३० (राज०)

प्रकाशकीय

वेदों में गो की महिमा पर सूक्त-के-सूक्त भरे पड़े हैं। गौ की महिमा का गौरव-गान करते हुए वेद ने कहा है—

गोस्तु मात्रा न विद्यते। —यजुः० २३।४८

गौ की तुलना नहीं की जा सकती।

गौ का दूध तो अमृत है ही, इसका मूत्र, गोबर भी रोग-निवारक और सर्वोत्तम खाद है।

वेद के गौरव और महत्त्व को समझकर गोपाल दयानन्द ने वेद के भाष्य, प्रचार और प्रसार के अतिरिक्त गोरक्षा और गोवध बन्दी के लिए भी महान् उद्योग किया था। महर्षि दयानन्द ने इस विषय में गोकरुणानिधि नामक एक पुस्तक का प्रणयन भी किया। इसमें गौ के दूध और गो-जायों=बैलों से उत्पन्न अन्न से कितने मनुष्यों का पालन-पोषण होता है—इसे गणित द्वारा विस्तारपूर्वक समझाया गया है। इस पुस्तक में लगभग १२५ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने हरित और श्वेत-क्रान्ति का सूत्रपात किया था।

महर्षि दयानन्द को वेद के पश्चात् कोई विषय प्रिय था तो गोरक्षा। इसके लिए उन्होंने हस्ताक्षर अभियान आरम्भ किया। अनेक अंग्रेज अधिकारियों से मिले और उन्हें गोवध को बन्द कराने और गोरक्षा के लिए प्रेरित किया। महर्षि के अन्य ग्रन्थों में उनका मस्तिष्क बोलता है, परन्तु इस ग्रन्थ में उनके हृदय की चीत्कार है।

महर्षि दयानन्द के सभी ग्रन्थों पर भाष्य और महाभाष्य लिखे जाने चाहिएँ। सौभाग्य से आजकल स्वामी विद्यानन्दजी स्वामीजी के ग्रन्थों पर भाष्य लिखने में लगे हुए हैं। इस ग्रन्थ पर भी स्वामीजी ने विस्तृत भाष्य लिख दिया है। पुस्तक अत्यन्त उपादेय, तथ्यों से युक्त, नूतन जानकारियों से भरपूर और अत्यन्त रोचक है। पाठक एक बार आरम्भ करके समाप्त करके ही छोड़ेगा। मेरे निवेदन पर स्वामीजी ने कृपापूर्वक मुनिवर गुरुदत्त संस्थान को इस ग्रन्थरत्न को प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी, तदर्थ मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि स्वामीजी की ऐसी ही कृपादृष्टि बनी रहेगी।

पाठकगण! इसे स्वयं पढ़ें, अन्यों को पढ़ने की प्रेरणा करें। गोसेवा का व्रत लें। गो-सदन खोलने और खुलवाने का व्रत लें। गोरक्षा करें और कराएँ तभी देश बचेगा, अन्यथा महर्षि दयानन्द के शब्दों में—'गो-आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है'।

आइए, हम गोरक्षण में सहयोगी बनें।

—प्रभाकरदेव आर्य

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास की हितकारी प्रकाशन योजना

हम लम्बे समय से अनुभव करते रहे हैं कि पुस्तकों के पाठक कम होते जा रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें पुस्तकों का महँगा होना भी एक कारण है। वर्तमान में पुस्तकों के मूल्य और व्यक्ति द्वारा प्रतिदिन पढ़े जानेवाले पृष्ठों का हिसाब लगायें तो आम आदमी की आय का एक बड़ा हिस्सा इसमें व्यय हो जाये। ऐसी स्थिति में व्यक्ति पुस्तकों से दूर ही रहेगा। या फिर वह सस्ती पुस्तकें अथवा पत्रिकाएँ क्रय करेगा, जो छपती तो लाखों की संख्या में हैं, लेकिन प्रायः हित नहीं करती हैं। इस समस्या के निराकरण हेतु हमने एक हितकारी प्रकाशन योजना प्रारम्भ की है जिसके अन्तर्गत उत्तम कागज पर कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसैट पर छपाई की जाकर सुन्दर सज्जा में आकर्षक व टिकाऊ आवरण-जिल्द तैयार करवा कर लागत मूल्य पर पुस्तकें सदस्यों को उपलब्ध करवाई जाएँगी।

इस योजना का सदस्यता शुल्क २५०/- (दो सौ पचास रुपये) है। यह प्रारम्भ में एक बार सदस्य को जमा कराने होते हैं। आप हमेशा इस योजना के सदस्य रहेंगे। योजना की सदस्यता समाप्त नहीं की जा सकेगी। आप इसे अपने स्थान पर किसी अन्य के नाम परिवर्तित करा सकते हैं।

इस योजना के अन्तर्गत वर्ष में दो बार में चार सौ रुपये के लगभग की पुस्तकें प्रकाशित होंगी। इन पुस्तकों का लेना सदस्यों के लिए अनिवार्य होगा।

एक सदस्य को एक पुस्तक लागत मूल्य+डाक व्यय पर प्राप्त होगी। एक सदस्य कितनी ही प्रतियों का सदस्य बन सकता है। वह जितनी प्रतियों का सदस्य बनेगा उसे उतना ही सदस्यता शुल्क जमा कराना होगा तथा उतनी ही प्रतियाँ लेनी होंगी।

पुस्तकें प्रकाशित होने पर बिना सूचना के सदस्यों को पंजीकृत डाक व कूरियर द्वारा भिजवाई जाएँगी। पुस्तक प्राप्त होने पर बीस दिन के अन्दर पुस्तकों का मूल्य+डाक या कूरियर व्यय भिजवा सकेंगे। समय से राशि नहीं भिजवाने पर अगली पुस्तकें वी०पी० द्वारा भिजवाई जाएँगी।

पुस्तकें वापिस आने पर क्षतिपूर्ति सदस्यता शुल्क से की जाएगी व सदस्यता समाप्त समझी जाएगी। यदि शुल्क में कुछ राशि बचती है तो वह वापिस नहीं होगी। क्षतिपूर्ति की राशि जमा करवाकर सदस्यता पुनः प्रारम्भ की जा सकती है।

इस योजना के अन्तर्गत समय-समय पर अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें विशेष छूट के साथ उपलब्ध कराई जाएँगी, जिनका लेना सदस्य की इच्छा पर निर्भर करेगा।

आशा है लाभकारी योजना के आप स्वयं सदस्य बनकर अपने परिचितों को भी बनाकर विचार के इस प्रसार अभियान में हमारा उत्साहवर्धन करेंगे।

आमुख

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधि महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ —यजुः० २२।२२

हे सर्वमहान् परमेश्वर! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेजयुक्त ब्राह्मण उत्पन्न हों, दुष्टों का दमन करनेवाले, बाणविद्या में अत्यन्त कुशल, महारथी, शूरवीर क्षत्रिय हों, प्रचुर मात्रा में दूध देनेवाली गौएँ, भार ढोने में समर्थ बैल और शीघ्रगामी घोड़े हों। जगत् का नेतृत्व करनेवाली स्त्रियाँ सर्वगुणसम्पन्न हों। यजमान का जवान पुत्र रथ में आसीन हो विजय प्राप्त करनेवाला और सभाकार्य में निपुण वीर पुरुष हो। मेघ अपेक्षित समय पर वर्षा करें। हमारी ओषधि-वनस्पति फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों। हमारा योग (अप्राप्त की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त की रक्षा) भली प्रकार होता रहे।

इस मन्त्र में एक कल्याणकारी राज्य (Welfare State) का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान सन्दर्भ में इसे किसी शासक का घोषणा-पत्र (Manifasto) कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की सुख-समृद्धि के लिए आवश्यक है कि उसमें (१) श्रेष्ठ ब्राह्मण=बुद्धिजीवी लोग (Intellectuals) बड़ी संख्या में हों, (२) दुष्टों का दमन करने और आक्रमणकारियों का संहार करने में समर्थ क्षत्रिय (Army and police) हों, (३) प्रचुर मात्रा में दूध देनेवाली दुधारू गौएँ हों, (४) कृषिकार्य के लिए हल चलाने और भार ढोनेवाले शक्तिशाली बैल हों, (५) युद्ध में काम आनेवाले तथा आवश्यकतानुसार लोगों को इधर-उधर लाने ले-जानेवाले शीघ्रगामी घोड़े हों, (६) नगर का नेतृत्व करनेवाली सशक्त नारियाँ हों, (७) युद्धक्षेत्र में विजय प्राप्त करनेवाले व राजकार्य में दक्ष युवा-वर्ग हो, (८) अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि के कारण होनेवाली हानियों से बचाव के लिए प्रकृति के साथ-साथ वृक्षों के संरक्षण तथा यज्ञ आदि के द्वारा अपेक्षित समय पर वर्षा हो, (९) अपेक्षित परिमाण में अन्न तथा फल आदि के उत्पादन तथा सुरक्षा की व्यवस्था हो तथा (१०) अभाव की आपूर्ति तथा प्राप्त की रक्षा एवं वितरण का समुचित प्रबन्ध हो। समाज तथा राष्ट्र के लिए कल्याणकारी इस व्यवस्था में पशुशक्ति के पालन-पोषण तथा विकास पर पर्याप्त बल दिया गया है, क्योंकि शरीर के पोषण के लिए जल के बाद अन्न तथा

दूध की सबसे अधिक आवश्यकता है, और ये पशुओं के द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

भारतीय संस्कृति की तो वह आत्मा है। कृषि-प्रधान देश की तो वह रीढ़ की हड्डी है। हज़ारों वर्षों के प्रयोगों के परिणामस्वरूप गोवंश को मानव-परिवार में स्थान मिला है। मानवीय सम्बन्धों का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। यह भारतीय समाजवाद का प्रतीक है।

वस्तुत: गौ हमारे सुखों का स्रोत है, निर्धन का जीवन है, धनवान् की शोभा है, परोपकार की प्रतिमा है, सरलता व सौम्यता की सजीव मूर्ति है और नि:स्वार्थ का प्रतिरूप है। आधुनिक सन्दर्भ में कहा जाए तो गौ धर्मनिरपेक्षता (Secularism) का चलता-फिरता रूप है। जिसपर मुग्ध होकर अकबर ने अपने शासनकाल में गो-वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया था, नरहरि बन्दीजन ने अपने उस अध्याय में स्वयं गौ के मुख से कहलवाया था—

जन्मदात्री माता, गोमाता और धरती माता में कौन बड़ी है, इसका निर्णय न कोई आज तक कर सका है और नहीं कोई भविष्य में कर सकेगा। गर्भधारण से लेकर अपने पैरों पर खड़ा होने का सामर्थ्य प्राप्त करने तक जो तप और साधना जन्मदात्री माता करती है, उसका मूल्य कौन आँक सकता है और कौन उसके ऋण से अनृण हो सकता है? परन्तु एक समय आता है जब उसके कर्तव्य की इतिश्री हो सकती है अथवा किसी दोष के कारण किसी समय वह बालक का पालन-पोषण करने में असमर्थ हो जाती है। तब वह गोमाता के आश्रय पर ही पलता-बढ़ता है। सामान्य स्थिति में भी बालक एक-डेढ़ वर्ष से अधिक माँ के दूध पर नहीं रहता, परन्तु गोमाता जीवन के अन्तिम साँस तक उसे जीवन और शक्ति प्रदान करती है। इतना ही नहीं, मरने के बाद भी वह अपनी सन्तान की चमड़ी से बने जूतों के द्वारा उसके पैरों की रक्षा करती है। गौ को माता यूँ ही नहीं कह दिया गया है। **'माता निर्माता भवति'**— निर्माण करनेवाली की संज्ञा माता है। उससे प्राप्त होनेवाला दूध हमारे लिए अमृत तुल्य भोजन प्रदान करता है। गाय का दूध मानव के लिए जितना अनुकूल, पौष्टिक और गुणकारी भोजन प्रदान करता है, वैसा अन्य कोई पदार्थ नहीं कर सकता। उससे प्राप्त होनेवाले घृत और मूत्र आदि पदार्थों से अनेक रोगनाशक ओषधियों का निर्माण होता है। वेद (अथर्व ३।१२।४) में गृहस्थ पत्नी को सलाह दी गई है कि ''वह अपने घर के लोगों को अमृत-जैसा गौ का दूध पिलाकर उनके शरीरों को पुष्ट तथा कान्तिमान् बनाती रहे'' और उनके लिए उससे कहा गया है कि ''वह अपने घर में दूध और दही से लबालब भरे घड़े रक्खा करे'' (अथर्व० ३।१२।६)। एक दूसरे स्थान पर (अथर्व० २।१६।८) कहा है कि ''मनुष्य को गौ का इतना अधिक दूध पीना चाहिए कि वह उससे

अपने को सींच ले, क्योंकि गौ के घी और दूध से शरीर में बल बढ़ता है और रक्त आदि रस बढ़ते हैं।'' गौ के इतने उपयोगी होने के कारण ही गोपालन पर इतना बल दिया गया है। ऋग्वेद (६।५४।५) में कहा है कि ''गौ का दूध पीना इतना गुणकारी है जितना सोम नामक ओषधि का सेवन करना''। चिकित्सा-पद्धति में गौ का दूध अनेक रोगों के निवारण में उपयोगी सिद्ध हुआ है, किन्तु यह गौ की नस्ल, जाति, रंग, स्वास्थ्य और उसके खान-पान पर निर्भर करता है। गैस के रोगियों को ठीक करने के लिए पीले रंग का दूध शरीर को शक्ति देते हुए रोगी के चित्त के असन्तुलन को दूर करता है। रंग-बिरंगी गाय अपनी चमड़ी के द्वारा सूर्य की किरणों के द्वारा सबल प्राणतत्त्वों का आकर्षण करके अमृत तुल्य दूध देकर विष को बाहर निकाल देती है और हर प्रकार से शरीर को हृष्ट-पुष्ट कर देती है। सोवियत रूस के कैंसर-रोग-विशेषज्ञ डाक्टरों का कहना है कि गाय का दूध हृदयरोग और कैंसर को पैदा नहीं होने देता और यदि हो भी जाए तो उसे ठीक करने में सहायक होता है। साधारणतया शरीर के भीतर साँस द्वारा निकलनेवाली वायु दूषित होती है, परन्तु जहाँ गाय बन्धती है वहाँ उठने, बैठने और रहनेवालों को तपेदिक नहीं होती। इसमें गौ का गोबर भी पूरक सिद्ध होता है। तपेदिक और पोलियो रोगों की तो गाय का दूध अचूक ओषधि है। काली गाय का दूध भी रोगनाशक और शक्तिदायक है। कैंसर की प्रारम्भिक अवस्था में तो गौ का पेशाब दवाई के तौर पर पीने से उसको बढ़ने से रोकने तथा अन्ततः उसे जड़मूल से समाप्त करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। चिकित्सा-शास्त्र के प्रवर्तकों में सुश्रुताचार्य के अनुसार गाय का दूध पित्त और तज्जन्य रोगों को दूर करने की अमोघ ओषधि है। कहते हैं—''**तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्**'' स्वर्ग में सब-कुछ सुलभ है, किन्तु छाछ वहाँ के राजा इन्द्र को भी नहीं मिलती जबकि थोड़ा अधिक पानी मिलाकर तैयार की हुई छाछ कई बातों में दूध से कहीं अधिक लाभदायक है। गाय का घी साधारणतया तो लाभदायक है ही, पुराना घी मिरगी, दमा, नेत्र-रोग तथा विष के प्रभाव को दूर करने में सहायक है। गौ का गोबर तक अनेकविध उपयोगी है। '**गोस्तु मात्रा न विद्यते**'—गौ के उपकारों की कोई सीमा नहीं है, इसलिए वेद कहता है—गौ के दूध में इतने गुण हैं कि उनके ऊपर सभाओं में घण्टों व्याख्यान दिये जा सकते हैं।

ऋग्वेद (१०।१९।२) के अनुसार गौवों के रंग-रूप, आकार भिन्न-भिन्न होते हैं और रंग-रूप भेद से उनके गुण-धर्म भी भिन्न होते हैं। हमारे शरीर में जो रक्त, वीर्य आदि नाना रस हैं उनको अपने दुग्धरूपी तेज से तेजस्वी बनाना गौओं का ही कार्य है, अर्थात् गौ के दूध से शरीर में नाना रस बनते हैं। गौओं के रंग-रूप के महत्त्व को चतुर वैद्य जानते

हैं। गोदुग्ध के प्रसंग में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात वेद के निम्न मन्त्र में कही गई है—

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु॥

—अथर्व० ४।२१।७

उन्हीं गौओं का दूध सेवन करना चाहिए कि जो बछड़ेवाली हों, अर्थात् जिनके बछड़े मरते न हों। जो उत्तम घास आदि पदार्थ खाती हों और शुद्ध स्थान का जल पीती हों। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसी गौओं का दूध हानिकारक होता है जो इधर-उधर गली-मुहल्लों में घूमती-फिरती हों या गन्दे नालों आदि का जल पीती हों। गौओं की चोरों, डाकुओं और हिंसक प्राणियों से सदा रक्षा करनी चाहिए। **'भद्रं गृहं कृणुथ'**—गौओं से घर की शोभा बढ़ाओ।

उत्तमोत्तम बैल

गौओं के वंश को उन्नत करने के लिए जहाँ उत्तम घास आदि का भोजन और पीने को स्वच्छ तथा निर्मल जल चाहिए, वहाँ गोओं की उत्तम नस्ल प्राप्त करने के लिए उनका उत्तमोत्तम वृषभों (साँडों) के साथ सम्बन्ध कराके उनसे सन्तानें कराई जानी चाहिएँ। वेद में इस बात पर बड़ा बल दिया गया है। अथर्ववेद के नवम काण्ड का २४वाँ सूक्त बड़े-बड़े २४ मन्त्रों का है। इसमें गौओं से सन्तानोत्पादन के लिए नियुक्त किये जानेवाले वृषभ (साँड) की महिमा गाई गई है और कविता की आलंकारिक भाषा में यह निर्देश किया गया है कि यदि कभी किसी के घर में बहुत उत्तम कोटि का बछड़ा उत्पन्न हो जाए तो उसे नगर की गौओं से सन्तान उत्पन्न करने के लिए ग्रामार्पण कर देना चाहिए। उसे 'ऐन्द्र' बना देना चाहिए, अर्थात् राज्य को सौंप देना चाहिए। वेद की दृष्टि में यह बड़ा पवित्र कार्य है, क्योंकि इससे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सबका हित होता है। इस निमित्त सामूहिक यज्ञ का आयोजन करके सबके समक्ष विधिपूर्वक ब्राह्मणों के द्वारा उस वृषभ को राष्ट्र के काम पर नियुक्त कराना चाहिए। राजा के कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए इक्कीसवें मन्त्र में कहा गया है कि राजा भी इसी प्रकार के समर्थ साँडों को प्रजा में समुचित वितरण के लिए अनेक पुष्कल दूध देनेवाली तथा बलिष्ठ बैलों को उत्पन्न करनेवाली गौएँ देता रहे। सूक्त में कहा गया है कि जो वृषभ जनता या राज्य की ओर से इस प्रकार नियुक्त किया जाए, वह 'साहस्रः' (९।४।१)—सहस्रों बच्चे उत्पन्न करने में समर्थ हो, 'त्वेषः' (९।४।१), अर्थात् बड़ा तेजस्वी हो, 'ऋषभः' (९।४।१), अर्थात् गतिशील, चंचल, फुर्तीला हो, 'पयस्वान्' (९।४।१), अर्थात् बहुत दूध देनेवाली नस्ल की गौ का पुत्र हो, जिससे उसकी सन्तान (बछड़ियाँ) भी बहुत

दूध देनेवाली बनें, 'उस्रिय:' (९।४।१) अर्थात् 'उस्रा'—गौओं से सम्बन्ध करने योग्य हो, 'पुमान्' (९।४।३) पुरुषत्वयुक्त अर्थात् बलवान् हो, 'अन्तर्वान्' (९।४।३) अर्थात् गर्भधारण करने में समर्थ हो, 'स्थविर:' (९।४।३) अर्थात् डील-डौल का पूर्ण जवान हो। ऐसे गुणी और समर्थ वृषभ को नियुक्त करने का प्रयोजन यह कि वह 'तन्तुमान्' (९।४।३) अर्थात् सन्तानरूप तन्तु को आगे फैलानेवाला सिद्ध हो, क्योंकि इस वृषभ ने 'पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्' (९।४।४) उत्तम बछड़े-बछड़ियों का पिता और गौओं का पति बनना है। प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेत:—इसके वीर्य से अमृत-जैसा ताज़ा दूध, आमिक्षा और घृत प्राप्त होते हैं, 'सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि' (९।४।६) व 'आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेत:' (९।४।७)—इसके कारण सोम-जैसे दूध से घड़े भर जाते हैं और उसके वीर्य के कारण घृत प्राप्त होता है। 'त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्' (९।४।६) यह रूपवान् बच्चे पैदा करनेवाला है। यहाँ सूक्त का केवल सारांश ही दिया गया है। वस्तुत: गौओं की नस्ल को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि उनका सम्बन्ध उच्च कोटि के गो-वृषों से कराने की व्यवस्था की जाए।

गोवध वेद-विरुद्ध

मध्यकालीन कुछ आचार्यों ने इस सूक्त का अनर्थ करके इस सूक्त को बैल को मारकर उसके मांस से यज्ञ करने में लगाया है। सायणाचार्य ने इस सूक्त के भाष्य की उत्थानिका में लिखा है कि ''ब्राह्मण बैल को मारकर उसके मांस से भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए आहुति देता है। इसमें वृषभ की प्रशंसा और उसके अङ्गों में कौन-कौन अङ्ग किस-किस देवता को प्रिय होते हैं—इसका विवेचन किया गया है और बैल की बलि देकर हवन करने के महत्त्व का वर्णन करते हुए इससे प्राप्त होनेवाले श्रेय की स्तुति की गई है''। उन आचार्यों का यह अर्थ सचाई से कोसों दूर है। जिसका नाम ही 'अघ्न्या (न मारने योग्य) है उसके वध की कल्पना कैसे की जा सकती है? वैदिक साहित्य में सवा सौ से अधिक बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है? और वह भी यज्ञ में, जिसके लिए वेदों में सैकड़ों जगह 'अध्वर' (जिसमें हिंसा नहीं हो सकती) शब्द का प्रयोग हुआ है। इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र में गौओं को सम्बोधन करके कहा है—

हे गौओ! इस जवान वृषभ को हम तुम्हारे सम्मुख खड़ा करते हैं। अपनी इच्छानुसार इसके साथ खेलते हुए विचरण करो। हे सौभाग्यशालिनी गौओ! तुम इसके द्वारा हमें बछड़े-बछड़ियाँ प्रदान करो और इस प्रकार हमें धनैश्वर्य से सम्पन्न करो।

वेद में गौओं को किया गया यह सम्बोधन यज्ञाग्नि में डाले गये बैल के प्रसंग में कैसे संगत हो सकता है, विशेषत: जबकि शास्त्रों में

अनेकत्र गोवध विरोधी वचन मिलते हैं। जैसे—

गां मा हिंसीः। —यजुर्वेद १३।४३

गौ को मत मारो।

मा गामनागामदितिं वधिष्ट। —ऋग्वेद ८।१०१।१५

गौ निष्पाप है, इसे मत मारो।

अन्तकाय गोघातकम्। —यजु० ३०।१८

गौ के हत्यारे को प्राण-दण्ड दो।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामः। —अथर्व० १।१६।४

गौ आदि के हत्यारे को सीसे की गोली से मार डालो।

योऽघ्न्या भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।

—ऋ० १०।८७।१६

जो न मारने योग्य गौ को मारे उनके सिरों को कुल्हाड़े से काट दो।

श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयो पशुः।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः॥
सुरा मत्स्याः पशोर्मांसमासवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥

—महाभारत

पूर्व काल में याज्ञिक लोग अन्न से ही यज्ञ करते थे। मद्य-मांसादि का प्रचार तो धूर्तों ने किया है, वेदों में यह कहीं नहीं है।

वेद के अनुसार गौ गृहस्थ की एक बहुत बड़ी सम्पत्ति है। उसे जब कभी अपने भगवान् से ऐश्वर्य की प्रार्थना करनी होती है तो उसकी माँगों में गौ अवश्य सम्मिलित होती है। वह एक नहीं, अनेक गौएँ अपने पास रखना चाहता है। उदाहरण के लिए अथर्ववेद (२।२६।२) में प्रार्थना की गई है कि "हे प्रभो! आपकी कृपा से मेरे गोष्ठ में इतनी अधिक गौएँ हों कि उनके आते समय धारा-सी बहती प्रतीत हो।" यजुर्वेद २२।२२ में सम्राट् के राज्यारोहण के समय राष्ट्र के कल्याण के लिए सामूहिक रूप से की गई प्रार्थना में अन्यान्य महत्त्वपूर्ण याचनाओं के साथ-साथ दुधारू गौओं और भारवाही बैलों की भी प्रार्थना की गई है।

सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में स्वामी दयानन्द ने लिखा है—"देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोलस्थ देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे, क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं

की बहुताई होने से अन्न-रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो-आदि पशुओं को मारनेवाले मद्यपायी अधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है, क्योंकि **'नष्टे मूले नैव पत्रं न पुष्पम्'**—जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाए तो फल-फूल कहाँ से हों?

२२ जनवरी १८८२ को बम्बई के फ्रामजी कावसजी इंस्टीट्यूट के भवन में दो हज़ार से अधिक की उपस्थिति में स्वामीजी ने कहा कि विदेशियों की संख्या अत्यधिक हो जाने से हिंसा बढ़ गई है। इसी प्रसंग में उन्होंने गोहत्या के अनौचित्य को भी सिद्ध किया।

वेद से अतिरिक्त दो अन्य विषय जो दयानन्द के अन्तराल और कार्य-कलाप में दूध में मक्खन की तरह व्याप्त थे और जिन्हें उन्होंने सार्वजिनिक आन्दोलन का रूप दिया, वे थे गोरक्षा और हिन्दी जिसे वे आर्यभाषा कहते थे। दयानन्द दयासागर थे—करुणानिधि थे। जो दयानन्द बड़ी-से-बड़ी आपत्तियों में विचलित नहीं हुए उसे हम दो अवसरों पर आँसू बहाता पाते हैं। एक—जब उन्होंने देखा कि एक माँ अपने बालक के शव को गङ्गा में बहाने से पहले उसको ढकनेवाले वस्त्र को उतार गङ्गा-जल में धोकर निचोड़ते हुए अपने साथ वापस ले-जा रही थी। पूछने पर उस माता ने बताया कि शव को लपेटने के लिए उसके पास कोई अतिरिक्त वस्त्र न होने से अपनी लाज को ढकनेवाली एकमात्र धोती से ही आधा हिस्सा फाड़कर उसी में बालक के शव को लपेटकर लाई थी। अब उसी को वापस ले-जाकर दोनों टुकड़ों को जोड़कर फिरसे उसे धोती का रूप दे दूँगी। सोने की चिड़िया कहलानेवाले देश की इस विपन्नता को देखकर दयानन्द का हृदय एकबारगी चीत्कार कर उठा। दो-एक बार मध्य रात्रि में छत पर आहट पाकर सेवक बलदेव की आँखें खुल गईं। ऊपर जाकर देखा कि दयानन्द बड़े उद्विग्न हो इधर-से-उधर टहल रहे हैं। बलदेव ने पूछा कि कहीं दर्द हो तो कोई दवाई लाऊँ। दयानन्द बोले—बलदेव! इस दर्द की दवा बाज़ार में नहीं मिलेगी और देश की दुर्दशा का संकेत करके आँसू बहाने लगे। ऐसा सहृदय व्यक्ति **''माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः''** को लाखों की संख्या में कटते देख-सुनकर द्रवित हुए बिना कैसे रह सकता था? गौ में तो उनके प्राण बसते थे।

जिसने विदेशी शासकों द्वारा अपनी रक्षार्थ की जानेवाली व्यवस्था को ठुकरा दिया वही दयानन्द गोमाता के प्राणों की भीख माँगने के लिए उनके द्वार खटखटाने में संकोच नहीं करता। कभी वह अजमेर के कमिश्नर डेविडसन के पास जाता है, कभी राजस्थान के पोलिटिकल एजेंट कर्नल ब्रुक्स के हाथ जोड़ता है। कर्नल ब्रुक्स से स्वामीजी ने यहाँ तक कह दिया था कि गाय भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और

सांस्कृतिक जीवन की आत्मा है। यदि गोवध जारी रहा तो १८५७ की क्रान्ति फिर दुहराई जा सकती है। इसी क्रम में वह सन् १८७३ में संयुक्त प्रान्त (उत्तरप्रदेश) के गवर्नर म्योर से मिलने के लिए दौड़कर फ़रुखाबाद जा पहुँचता है और याचना के स्वर में उससे कहता है—''यदि इंगलैण्ड पहुँचने पर आपको वहाँ की इण्डिया कौंसिल का सदस्य बना दिया गया तो क्या आप भारत में गोवध बन्द कराने का यत्न करेंगे? उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह ने ऋषि दयानन्द को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। महाराणा ने स्वामीजी के आवास के लिए गुलाब-बाग़ स्थित अपना नौलखा महल दिया। (२८ नवम्बर १९९२ को यह महल राजस्थान सरकार ने विधिवत् आर्यसमाज को सौंप दिया।) महाराणा सज्जन सिंह नियमित रूप से प्रतिदिन स्वामीजी के पास मनुस्मृति आदि पढ़ने के लिए नौलखा महल में आया करते थे, परन्तु एक दिन लोगों ने उलटी गङ्गा बहती देखी। उस दिन स्वामीजी स्वयं महाराणा के दरबार में जा पहुँचे। दशहरा के अवसर पर चढ़ाई जानेवाली पशुबलि से द्रवीभूत होकर स्वामीजी ने महाराणा से निवेदन किया—

''आप राजा हैं, न्यायासन पर विराजमान हैं। मैं इन मूक प्राणियों का वकील बनकर आपके सामने अभियोग लेकर उपस्थित हूँ। बताइए इनका क्या अपराध है जो देवताओं के नाम पर इन्हें प्राणदण्ड दिया जा रहा है?'' महाराणा ने चिरकाल से चली आ रही इस प्रथा को तुरन्त बन्द कर देने का आदेश दे दिया।

स्वामीजी ने उदयपुर-नरेश महाराणा सज्जनसिंह से जोधपुर नरेश को पत्र लिखवाकर अपने राज्य में गोवध बन्द करने की प्रेरणा की। उसके उत्तर में जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह ने लिखा—

''म्हारी प्रजा में १४, ६१, १५६ हिन्दू ने, १, ३७, ११९ मुसलमान हैं। या तीन पशु गाय, बैल भैंस नहीं मारयां जावणरा प्रबन्ध में खुशी है और मैं पिण रजामन्द हाँ।'' संवत् १९३९ पौष बदि ५।

ख़ास मुहर

हस्ताक्षर—राजराजेश्वर
महाराजाधिराज जसवन्तसिंह जोधपुर

स्वामीजी के प्रयत्न से उदयपुर और जोधपुर राज्यों में गोहत्या बन्द हो गई। भारत के इतिहास में उनकी प्रेरणा से राव युधिष्ठिरसिंह (हरियाणा के सुप्रसिद्ध राजनेता राव वीरेन्द्रसिंह के दादा) द्वारा रिवाड़ी में सन् १८७८ में स्थापित गोशाला आधुनिक भारत की सबसे पहली गोशाला है, पर ऋषि दयानन्द गोरक्षा के प्रश्न को केवल देशी रियासतों अथवा हिन्दूधर्म की पीरधि तक सीमित रखना नहीं चाहते थे। गोरक्षा का सम्बन्ध मुख्यत: देश की व्यापक अर्थनीति से था। उन्होंने निश्चय

किया कि गोवध पर प्रतिबन्ध लगाने विषयक प्रतिवेदन पर दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर करवाकर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को भेजा जाए। प्रतिवेदन में कहा गया था—

''ऐसा कौन मनुष्य जगत् में है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दु:ख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के किये अपने उपकार में स्वयं आनन्दित होता है, वैसे ही परोपकार करने में सुखी अवश्य होना चाहिए। क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है या होगा जो परोपकाररूप धर्म और परहानिस्वरूप अधर्म के सिवाय धर्म वा अधर्म की सिद्धि कर सके? धन्य वे महाशय जन हैं जो अपने तन, मन और धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टिक्रम से ठीक-ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो-जो वस्तु बनाया है, वह-वह पूर्ण उपकार के लिए है, अल्पलाभ से महाहानि करने के अर्थ नहीं। विश्व में दो ही जीवन के मूल हैं—एक अन्न और दूसरा पान। इसी अभिप्राय से आर्यवर शिरोमणि राजे-महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय, बैल, भैंस आदि को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते हैं, क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है। इससे सबका जीवन सुखी हो सकता है। जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुक़सान इनके मारने और मरवाने से होता है, उतना अन्य किसी कर्म से नहीं। इसका निर्णय गोकरुणानिधि पुस्तक में अच्छे प्रकार प्रकट कर दिया है, अर्थात् एक गाय के मारने और मरवाने से चार लाख बीस हज़ार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इसलिए हम सब लोग स्वप्रजा की हितैषिणी श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन महाराणी विक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्यायरूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य में से छुड़वाके अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हमको पूरा विश्वास है कि विद्या, धर्म, प्रजाहितप्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्विन महाराणी विक्टोरिया, पार्लियामेण्ट सभा तथा सर्वोपरि प्रधान आर्यावर्त्तस्थ श्रीमान् गवर्नरजनरल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह तथा प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सबको परम आनन्दित करें। देखिए कि उक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो गई और नित्यप्रति अधिक-अधिक होती जाती है। पक्षपात छोड़के जो कोई देखता है तो वह परोपकार ही को धर्म और पर-हानि को अधर्म निश्चित जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि

जिस-जिस से अधिक उपकार हो, उस-उसका पालन, वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में हमें ऐकमत्य करे।"

हस्ताक्षर—

इस कार्य के सम्पादनार्थ आवश्यक निर्देश स्वामीजी ने विज्ञापनरूप अपने १४ मार्च १८८२ के पत्र में इस प्रकार दिये—

"सब आर्यपुरुषों को विदित किया जाता है कि जिस पत्र के ऊपर (ओम्) और नीचे (हस्ताक्षर) ऐसा वचन लिखा है, वही सही करने का है। उसपर सही इस प्रकार करनी होगी कि जिसके स्वराज्य व देश में मनुष्यों की जितनी संख्या हो उतनी संख्या लिखके अर्थात् इतने सौ, हज़ार व लाख व करोड़ मनुष्यों की ओर से मैं अमुकनामा पुरुष सही करता हूँ। इस प्रकार एक श्रीयुत महाशय प्रधान पुरुष की सही में सर्वसाधारण आर्यपुरुषों की सही आ जाएगी, परन्तु जितने मनुष्यों की ओर से एक मुख्य पुरुष सही करे, वह उनसे सही लेके अपने पास अवश्य रक्खे और जो मुसलमान वा ईसाई लोग इस महोपकारक विषय में दृढ़ता और प्रसन्नता से सही करना चाहें तो कर दें। मुझको दृढ़ निश्चय है कि आप परम उदार महात्माओं के उत्साह, पुरुषार्थ और प्रीति से यह सर्व उपकारक महापुण्य कीर्ति-प्रदायक कार्य यथावत् सिद्ध हो जाएगा।

—दयानन्द सरस्वती

इसके लिए उन्होंने और उनके अनुयायियों ने अनथक प्रयत्न किया। अकेले शाहपुराधीश ने चालीस हज़ार हस्ताक्षर कराकर भेजे थे। महाराणा उदयपुर के अतिरिक्त महाराजा जोधपुर एवं बूँदी के महाराजा ने भी हस्ताक्षर अभियान में सराहनीय प्रयास किया, पर अभी कुछ लाख हस्ताक्षर ही हो पाये थे कि स्वामीजी का निधन हो गया। इस प्रकार स्वामीजी की असामयिक मृत्यु हो जाने से यह कार्य सम्पन्न न हो सका, पर इससे कई ऐसी बातें स्पष्ट होती हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि उनकी विचारधारा संकीर्ण नहीं थी। इस प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर करनेवालों में मुसलमानों, ईसाइयों की संख्या कम नहीं थी और यह भी कि गाय, बैलों के अतिरिक्त उसमें भैंसों की हत्या पर भी रोक लगाने की माँग की गई थी। इस ज्ञापन की वैधानिकता के सम्बन्ध में भी स्वामीजी ने कुछ उच्च कोटि के वकीलों से भी परामर्श किया था।

सत्यार्थप्रकाश एक विविध विषय-विभूषित बृहद् ग्रन्थ है। उसमें एक विषय गोरक्षा है। यही एक ऐसा विषय है जिसको लेकर स्वामीजी ने 'गोकरुणानिधि' नाम से सत्यार्थप्रकाश से पृथक् एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की। दयानन्द ने जीते-जी अपने किसी भी ग्रन्थ का अंग्रेज़ी में अनुवाद किये जाने की अनुमति नहीं दी, परन्तु गोकरुणानिधि का

अंग्रेज़ी में अनुवाद कराके विलायत भेजना और समय-समय पर गौरांग महापुरुषों से वार्ता करते रहना स्वीकार किया। ११ नवम्बर १८८१ को चित्तौड़ से लाहौर के लाला मूलराजजी को स्वामीजी ने लिखा—

"यहाँ हमारे पास कोई इंगलिश का विद्वान् नहीं है। इसलिए यहाँ भाषान्तर होना असम्भव है। हम चाहते थे कि किसी प्रकार आप ही इस गोकरुणानिधि पुस्तक को अंग्रेज़ी में कर देते तो ठीक होता और शीघ्र ही हो जाता। जब आप लोग कुछ नहीं करेंगे तो हम अकेले क्या कर सकेंगे। जो किसी प्रकार आपसे तरजमा न हो सके तो हमारे पास भेज दो। जब हम मुम्बई जावेंगे वहाँ इंगलिश के विद्वान् मिलेंगे तब अंग्रेज़ी में करा लेवेंगे।"

तत्पश्चात् चित्तौड़ से ही ९ दिसम्बर सन् ८१ को स्वामीजी ने लाला मूलराजजी को लिखा—

"..............आपने जो गोकरुणानिधि पुस्तक को इंगलिश में भाषान्तर कर देना स्वीकार किया उससे बहुत आनन्द हुआ, क्योंकि अंग्रीज़ी भाषा में होने से अन्य देशवालों को भी लाभ पहुँचेगा।"

परन्तु स्वीकार कर लेने पर भी ला० मूलराज ने अनुवाद किया नहीं। इसका विवरण पं० श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह' में प्रस्तुत किया है। उसे अविकल रूप में हमने इस पुस्तक के अन्त में दिया है।

यह सब स्वामीजी के गोवंश के प्रति प्रेम के अतिशय्य का द्योतक है। गीता में कहा है—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ —८।६

जिस-जिस पदार्थ को स्मरण करता हुआ मनुष्य अन्त समय में देह को त्यागता है, उस-उस पदार्थ की वासना से बसा हुआ उसी को प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द को २९ सितम्बर सन् १८८३ को विष दिया गया कहा जाता है। उससे २२ दिन पूर्व ७ सितम्बर १८८३ को उन्होंने उदयपुर राज्य के मन्त्री कविराज श्यामलदास को भेजे गये पत्र में लिखा था—"गोरक्षार्थ महाराजा होलकर की सही (हस्ताक्षर) कराओ।" उनका अन्तिम पत्र आश्विन वदी १३ सं. १९४० (२९ सितम्बर १८८३) का लिखा मिलता है। इसके साथ ही मसूदा को लिखा एक अन्य पत्र है जिसमें लिखा है—"आश्विन वदी १३ को वर्षा बहुत हुई। इस कारण अभी ८-७ दिन नहीं आना होगा।" आश्विन वदी १३ को वर्षा की सूचना देनेवाला पत्र अगले दिन अर्थात् आश्विन वदी १४ सम्भवतः ३० सितम्बर को लिखा गया होगा।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि मृत्यु के आस-पास के दिनों में उनका

हृदय गोप्रेम और उसकी रक्षार्थ किये जा रहे प्रयास के रंग में रंगा था।

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में बुद्धितत्त्व प्रधान रहा है, किन्तु 'गोकरुणानिधि' ऐसा ग्रन्थ है जिसमें उनके हृदय की पुकार है। गौ का करुण–क्रन्दन सुनकर उनका हृदय चीत्कार कर उठा। गोकरुणानिधि में वे मानो गौ के गले से लिपट कर रोये हैं। वहाँ उन्होंने अपने प्रभु को शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन करके चुनौतीभरे स्वर में खरी–खोटी तो सुनाई ही, दो–दो हाथ करने तक में संकोच नहीं किया। ऋषि के प्रति श्रद्धा और उनके गोप्रेम से प्रेरित होकर ही हमने क्षीणकाय होते हुए भी आधी–अधूरी आँखों और काँपते हाथों से गोकरुणानिधि की व्याख्या लिखने का उपक्रम किया है। इसका उपसंहार प्रभु के हाथों में है।

दासानुदास—
विद्यानन्द सरस्वती
डी-१४।१६ मॉडल टाउन, दिल्ली

१३-११-१९९३ ऋषिनिर्वाण दिवस संवत् २०५० वि०

ओ३म् नमो नमः सर्वशक्तिमते जगदीश्वराय॥

भूमिका

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥
—य० अ० ३६। मं० ८॥

तनोतु सर्वेश्वर उत्तमम्बलं गवादिरक्षं विविधं दयेरितः।
अशेषविघ्नानि निहत्य नः प्रभुः सहायकारी विदधातु गोहितम्॥ १॥
ये गोसुखं सम्यगुशन्ति धीरास्ते धर्म्मजं सौख्यमथाददन्ते।
क्रूरा नराः पापरता न यन्ति प्रज्ञाविहीनाः पशुहिंसकास्तत्॥ २॥

वे धर्मात्मा विद्वान् लोग धन्य हैं, जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव, अभिप्राय, सृष्टि-क्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण और आप्तों के आचार से अविरुद्ध चलके सब संसार को सुख पहुँचाते हैं और शोक है उनपर जोकि इनके विरुद्ध, स्वार्थी, दयाहीन होकर जगत् में हानि करने के लिए वर्तमान हैं। पूजनीय जन वे हैं कि जो अपनी हानि होती हो तो भी सबके हित के करने में अपना तन, मन, धन लगाते हैं और तिरस्करणीय वे हैं जो अपने ही लाभ में सन्तुष्ट रहकर सबके सुखों का नाश करते हैं।

गौ की गुहार

इन्द्रो विश्वस्य—हे जगदीश्वर ! आप विद्युत् के समान संसार के बीच प्रकाशमान हैं। आपके अनुग्रह से हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए और (चतुष्पदे) पश्वादि के लिए सुख हो।

इस वेद मन्त्र के द्वारा परमेश्वर की स्तुति करके ग्रन्थकार स्वरचित श्लोकों में याचना के स्वर में प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

तनोतु—सर्वशक्तिमान् दयालु परमेश्वर गौ आदि समस्त प्राणियों की रक्षा के लिए हमें प्रेरित करे और इसके मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करे।

जो भद्र पुरुष हृदय से गोसंरक्षण के कार्य में लगे हों वे धर्म में प्रवृत्ति के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले सुख और आनन्द को प्राप्त करें। इसके विपरीत जो मूर्ख और क्रूर लोग हत्या-जैसा जघन्य पाप करते हैं वे कदापि उस सुख को प्राप्त न हों।

धन्य लोग—सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास के आरम्भ में ग्रन्थकार ने स्वरचित एक श्लोक में 'धन्य' कहलानेवाले पुरुषों के गुणों का विवेचन करते हुए अन्त में लिखा है—

संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार—

ऐसा सृष्टि में कौन मनुष्य होगा जो सुख और दुःख को स्वयं न मानता हो? क्या ऐसा कोई भी मनुष्य है कि जिसके गले को काटे वा रक्षा करे, वह दुःख और सुख का अनुभव न करे? जब सबको लाभ और सुख ही में प्रसन्नता है तो बिना अपराध के किसी प्राणी का प्राणवियोग करके अपना पोषण करना यह सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न होवे? सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि में मनुष्यों के आत्माओं में अपनी दया और न्याय को प्रकाशित करे कि जिससे ये सब दया और न्याययुक्त होकर सर्वदा सर्वोपकारक काम करें और स्वार्थपन से पक्षपातयुक्त होकर कृपापात्र गाय आदि पशुओं का विनाश न करें कि जिससे दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि से युक्त होकर सब मनुष्य आनन्द में रहें।

परहित सरिस धरम नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई॥

भर्तृहरि ने मनुष्यों में विभिन्न कोटियों का विवेचन इस प्रकार किया है—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृताः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥

भावार्थ—संसार में वे लोग सत्पुरुष (उत्तम कोटि के मनुष्य) हैं जो अपने स्वार्थ को तिलांजलि देकर भी दूसरों का भला करते हैं। वे सामान्य (मध्यम कोटि के) मनुष्य हैं जो, अपना काम न बिगाड़ते हुए दूसरों का कार्य सिद्ध करते हैं। वे राक्षस (अधम कोटि के लोग) हैं जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरों का काम बिगाड़ते हैं, परन्तु जो लोग बिना किसी स्वार्थ के व्यर्थ ही दूसरों के हित की हानि करते हैं, उन्हें किस नाम से पुकारा जाए, यह हम नहीं जानते, क्योंकि वे राक्षसों से भी गये-बीते महानीच हैं।

भर्तृहरि ने यहाँ अपने समय के चार प्रकार के लोगों का ही उल्लेख किया है। वर्त्तमान में पाँचवीं कोटि के लोग भी मिलते हैं—वे जो अपनी हानि करके भी दूसरों की हानि करने में प्रसन्न होते हैं। ऐसे लोग अपनी नाक कटाकर दूसरे का अपशकुन करने में संकोच नहीं करते अथवा यदि पड़ौसी की दोनों आँखें फूट जाएँ तो अपनी एक आँख फुड़वाने को तैयार हो जाएँगे।

सुख-दुःख का अनुभव—जीवात्मा का लक्षण करते हुए न्यायदर्शन में लिखा है—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥ —१।१।१०

इस ग्रन्थ में जो कुछ अधिक, न्यून वा अयुक्त लेख हुआ हो उसको बुद्धिमान् लोग इस ग्रन्थ के तात्पर्य के अनुकूल कर लेवें। धार्मिक विद्वानों की यही योग्यता है कि वक्ता के वचन और ग्रन्थकर्ता के अभिप्राय के अनुसार ही समझ लेते हैं। यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है, जिससे गो-आदि पशु जहाँ तक सामर्थ्य हो बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सबको सुख बढ़ता रहे। परमात्मा कृपा करें कि यह अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो।

इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं—एक समीक्षा, दूसरा नियम और तीसरा उपनियम। इनको ध्यान दे पक्षपात छोड़ विचारके राजा तथा प्रजा यथावत् उपयोग में लावें कि जिससे दोनों के लिए सुख बढ़ता ही रहे।

॥ इति भूमिका ॥

अर्थात् जिसमें राग, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण हों वह जीवात्मा है। इसके साथ यह भी सत्य है कि 'दुःखादुद्विजते लोकः सर्वस्य सुखमीप्सितम्'—प्राणिमात्र सुख चाहता और दुःख से दूर भागता है। इसलिए महाभारत में कहा है—''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्''—तनिक-सा काँटा चुभने पर कितनी पीड़ा होती है, यह जानते हुए भी किसी के गले पर छुरी फेरना महापाप नहीं तो क्या है? और इतना बड़ा पाप मात्र जिह्वा के स्वाद के लिए करनेवाला 'मनुष्य' पद का अधिकारी कैसे हो सकता है—

एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्यः प्राणैर्विमुच्यते।

मरनेवाले की जान चली गई और खानेवाले को स्वाद नहीं आया, क्योंकि उसमें मिर्च-मसाला कम था। इसीलिए ग्रन्थकार ने लिखा है—'बिना किसी अपराध के किसी प्राणी का प्राण वियोग करके अपना पोषण करना, यह सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न होवे।'

भूल सुधार—ग्रन्थकार ने कहीं भी अपने को निर्भ्रान्त नहीं माना है।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

इसलिए उन्होंने ऐसे स्थलों में अपेक्षित सुधार की छूट दे दी है, परन्तु इस कार्य में अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है।

श्वेतक्रान्ति-हरित क्रान्ति—'दुग्ध आदि पदार्थों और खेती आदि क्रियाओं की सिद्धि—गौ और कृषि दोनों का चोली-दामन का सम्बन्ध है। इन्हीं को अब श्वेत क्रान्ति (White revolution) और हरित क्रान्ति (Green revolution) का नाम दिया गया है। ग्रन्थकार ऋषि होने से क्रान्तदर्शी थे। इन दोनों को लक्ष्य करके ही ग्रन्थकार ने भारत सरकार की तरह 'गोसंवर्द्धन समिति' न बनाकर 'गोकृष्यादिरक्षिणीसभा' की स्थापना का विचार दिया था।

॥ओ३म्॥

अथ गोकरुणानिधिः ॥

(१) अथ समीक्षा-प्रकरणम्

गोकृष्यादिरक्षिणीसभा

प्रारभ्यमाण ग्रन्थ के नामनिर्देश में 'अथ' पद का प्रयोग प्राचीन काल से चला आता है। भारतीय साहित्य में इसके प्रयोग को मांगलिक माना जाता है। साधारणतया 'अथ' का अर्थ 'प्रारम्भ करना' माना जाता है, पर प्राचीन परम्परा उच्चारणमात्र से इसे मांगलिक मानती आई है। अज्ञातकाल से ही गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा एक श्लोक चला आता है—

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

कतिपय विद्वानों का मत है कि मङ्गलाचरण की प्रथा मध्यकालिक आचार्यों से चली है, प्राचीन आर्यों में ऐसी मान्यता नहीं रही, परन्तु ग्रन्थकार इससे सहमत नहीं हैं। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को आरम्भ करते हुए उन्होंने चालू प्रथा का पूरी तरह पालन किया है। इतना ही नहीं, समुल्लास के अन्त में वैदिक दृष्टि के अनुसार इसका विवेचन भी प्रस्तुत किया है। मंगलाचरण की पौराणिक व तान्त्रिक प्रथा अमान्य है, किन्तु ग्रन्थकार ने अपने सभी ग्रन्थों में वैदिक मान्यता को बनाए रक्खा है।

मध्यकालिक आचार्यों ने ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण का प्रयोजन विघ्न-बाधाओं का नाश माना है, पर ग्रन्थकार इससे सहमत प्रतीत नहीं होते। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास के अन्तिम भाग में सांख्यदर्शन का सूत्र उद्धृत कर उन्होंने कहा है—"**मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति**"५।१ अर्थात् ऐसा आचरण जो न्याय, पक्षपातरहित सत्य तथा वेदोक्त ईश्वर की आज्ञानुसार यथावत् सर्वत्र और सदा अनुष्ठान में आवे, उसी को मङ्गलाचरण कहना चाहिए। विघ्न-बाधाओं को दूर हटाते हुए किसी ग्रन्थ की सम्पूर्णता एवं प्रारम्भ किये हुए किसी कार्य की निर्बाध सम्पन्नता ग्रन्थरचना वा कार्य करनेवाले व्यक्ति के तद्विषयक विशेष ज्ञान, धैर्य, उत्साह तथा अनवरत परिश्रम पर निर्भर करती है। प्रत्येक कार्य में अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाएँ सम्भव हैं। ऐसी बाधाओं के प्रतीकार भिन्न-भिन्न होते हैं। केवल मङ्गलाचरण उनका प्रतीकार नहीं है। इसलिए मङ्गलाचरण की वास्तविकता को समझकर ही उसकी उपादेयता पर ध्यान देना उचित व उपयुक्त होगा।

गोकृष्यादिरक्षिणीसभा

प्रथम बार संवत् १९३७ के अन्त में प्रकाशित गोकरुणानिधि के

इस सभा का नाम 'गोकृष्यादिरक्षिणी' इसलिए रक्खा है जिससे गवादि पशु और कृष्यादि कर्मों की रक्षा और वृद्धि होकर सब प्रकार के उत्तम सुख मनुष्यादि प्राणियों को प्राप्त होते हैं और इसके बिना निम्नलिखित सुख कभी नहीं प्राप्त हो सकते।

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने इस सृष्टि में जो-जो पदार्थ बनाये हैं, वे निष्प्रयोजन नहीं, किन्तु एक-एक वस्तु अनेक-अनेक प्रयोजन के लिए रची है। इसलिए उनसे वे ही प्रयोजन लेना न्याय अन्यथा अन्याय है। देखिए! जिस लिए यह नेत्र बनाया है, इससे वही कार्य लेना सबको उचित होता है न कि उससे पूर्ण प्रयोजन न लेकर बीच ही में वह नष्ट कर दिया जावे। क्या जिन-जिन प्रयोजनों के लिए परमात्मा ने जो जो

दो भाग हैं। प्रथम भाग में गौ आदि पशुओं को मारकर खाने की अपेक्षा उनकी रक्षा करके उनके घी-दूध द्वारा अधिक लाभ होने का विवरण प्रस्तुत किया गया है और मांसाहार से होनेवाली हानियों का विवेचन करते हुए निरामिष भोजन के महत्त्व को दर्शाया गया है। दूसरे भाग में गवादि पशुओं की रक्षा के लिए स्थापित की जानेवाली गोरक्षिणी सभा के नियमोपनियम दिये गये हैं। प्राय: प्रकाशक गोकरुणानिधि पुस्तक के इस भाग को अनावश्यक समझकर अथवा प्रथम भाग को अधिक महत्त्वपूर्ण मानकर उसकी उपेक्षा कर देते हैं। यह ऋषि के अभिप्राय के विरुद्ध है। अन्ततः गौ और कृषि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इसलिए ऋषि ने सभा के नाम की व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि "इस सभा का नाम 'गोकृष्यादिरक्षिणिसभा' इसलिए रखा है, जिससे गवादि पशु और कृष्यादि कर्मों की रक्षा और वृद्धि होकर सब प्रकार के उत्तम सुख मनुष्यादि प्राणियों को प्राप्त होते हैं।" भारत के संविधान की धारा ४९ की रचना लगभग इन्हीं शब्दों में की गई है। वहाँ लिखा है—

Organisation of agriculture and animal husbandry—"The State shall endeavour to organise agriculture and animal husbandry on modern and scientific lines and shall in particular, take steps for preserving and improving the breeds, and prohibiting the slaughtering of cows and calves and other milch and draught cattle."

अर्थात् कृषि और पशुपालन (गोकृष्यादि) का संगठन (सभा)— राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशिष्टतया गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा।

इन्द्रियों का प्रयोजन—आत्मा को कर्मफल का उपभोग करने के लिए बाह्य जगत् से सम्पर्क करना पड़ता है, क्योंकि विषयरूप भोग-

पदार्थ बनाये हैं, उन–उनसे वे–वे प्रयोजन न लेकर उनको प्रथम ही विनष्ट कर देना सत्पुरुषों के विचार में बुरा कर्म नहीं है? पक्षपात छोड़कर देखिए, गाय आदि पशु और कृषि आदि कर्मों से सब संसार को असंख्य सुख होते हैं वा नहीं? जैसे दो और दो चार, वैसे ही सत्यविद्या से जो-जो विषय जाने जाते हैं वे अन्यथा कभी नहीं हो सकते।

जो एक गाय न्यून–से–न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर, तो प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कोई शङ्का नहीं। इस हिसाब से एक मास में सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम ६ महीने और दूसरी अधिक से अधिक १८ महीने तक दूध देती हैं, तो दोनों का मध्यभाग प्रत्येक गाय के दूध देने में बारह महीने होते हैं। इस हिसाब से बारह महीनों का दूध निन्नानवे मन होता है। इतने दूध को औंटाकर प्रति सेर में छटांक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डालकर खीर बना खावें, तो प्रत्येक पुरुष के लिए दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है, क्योंकि यह भी एक मध्यभाग की गिनती है, अर्थात् कोई दो

सामग्री बाह्य जगत् में ही उपलब्ध है, आत्मा शरीर के भीतर रहता है। बाहर उसकी गति नहीं। इसलिए उसे बाह्य जगत् से सम्पर्क करने के लिए ऐसे साधन की आवश्यकता है जो आत्मा और शरीर दोनों के बीच माध्यम का कार्य कर सके। इसी मध्यस्थ या सम्पर्क अधिकारी को 'मन' कहते हैं, परन्तु मन भी शरीर से बाहर नहीं जा सकता। कार्यालय के भीतर बैठे–बैठे कार्य–सम्पादन के लिए उसे भी ऐसे सहायकों की आवश्यकता होती है, जो बहिर्मुख होने के कारण बाह्य जगत् से सीधा सम्बन्ध रखते हों, इन्हीं को इन्द्रियाँ कहते हैं। इनका स्वामी होने से आत्मा 'इन्द्र' कहलाता है। प्रत्येक इन्द्रिय का उसके लिए नियत कार्य में लगाना ही उचित है। वेद का आदेश है—"**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः.......।**" ऐसा न करके आँखों को फोड़ देना कहाँ कि बुद्धिमत्ता है। पूर्वकृत कर्मों का फल भोगने और वर्तमान में पुरुषार्थ द्वारा मोक्ष का अधिकारी बनने के लिए शरीर मिलता है। उससे इस प्रयोजन की सिद्धि न करके आत्महत्या करके इसे नष्ट करनेवाले को क्या कहेंगे? इसी प्रकार संसार में दूध प्राप्त करने और कृषि आदि में सहायक होने के लिए परमेश्वर ने गाय, बैल और भैंस आदि पशुओं की सृष्टि की है। उनका इस रूप में उपयोग न करके उनकी हत्या करना स्वयं अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है।

ग्रन्थकार ने सत्यार्थप्रकाश में भी इस विषय का विवेचन किया है। गाय और बैल से प्राप्त होनेवाले दूध और अन्न के हिसाब में सत्यार्थप्रकाश और गोकरुणानिधि की संख्याओं में कुछ भेद है। वह भेद सामान्यभूत अनुमानिक गणना के कारण है। सत्यार्थप्रकाश में सर्वयोग

सेर दूध की खीर से अधिक खाएगा और कोई न्यून, इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से १९८० एक हज़ार नवसौ अस्सी मनुष्य एक बार तृप्त होते हैं। गाय न्यून-से-न्यून ८ और अधिक-से-अधिक १८ बार ब्याती है, इसका मध्यभाग तेरह बार आया, तो २५,७४० पच्चीस हज़ार सातसौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्मभर के दूधमात्र से एक बार तृप्त हो सकते है।

इस गाय के एक पीढ़ी में छह बछियाँ और सात बछड़े हुए। इनमें से एक की मृत्यु रोगादि से होना सम्भव है, तो भी बारह रहे। उन छह बछियाओं के दूधमात्र से उक्त प्रकार १,५४,४४० एक लाख चौवन हज़ार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन हो सकता है। अब रहे छह बैल, उनमें एक जोड़ी से दोनों साख में दोसौ मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार तीन जोड़ी छह सौ मन अन्न उत्पन्न कर सकती हैं और उनके कार्य का मध्यभाग आठ वर्ष है। इस हिसाब से ४८०० मन अन्न उत्पन्न करने की शक्ति एक जन्म में तीन जोड़ी की है। इतने (४८०० मन) अन्न से प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव अन्न भोजन में गिनें, तो २,५६,००० दो लाख छप्पन हज़ार मनुष्यों का एक बार भोजन होता है। दूध और अन्न को मिलाकर देखने से निश्चय है कि ४,१०,४४० चार लाख दश हज़ार चारसौ चालीस मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है। अब छह गाय की पीढ़ी पर पीढ़ीयों का हिसाब लगाकर देखा जावे तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और इसके मांस से अनुमान है कि केवल अस्सी मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। देखो! तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं?

यद्यपि गाय के दूध से भैंस का दूध कुछ अधिक और बैलों से भैंसा कुछ न्यून लाभ पहुँचता है, तथापि जितना गाय के दूध और बैलों के उपयोग से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसियों के दूध

चार लाख पिछत्तर हज़ार छह सौ लिखा है।

गाय सर्वोत्तम क्यों?

१. आधुनिक वैज्ञानिक इस बात पर चकित हैं कि प्रत्येक पशु के मांस वा दूध में संखिया का अंश पाया जाता है। गाय के मांस में भी संखिया का अंश पाया जाता है, परन्तु उसके दूध में संखिया का अंश आज तक उपलब्ध नहीं हुआ। इससे भी गाय के दूध का और इस कारण गाय का वैशिष्ट्य प्रत्यक्ष सिद्ध है।

२. भैंस का दूध सफेद और गौ का दूध पीला होता है, इसलिए भैंस और गाय के दूध को क्रमशः चाँदी और सोना कहा जाता है। इसे

और भैंसों से नहीं, क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धिवर्द्धक आदि गुण गाय के दूध में और लाभ बैलों से होते हैं, उतने भैंस के दूध और भैंसे आदि से नहीं हो सकते। इसलिए आर्यों ने गाय सर्वोत्तम मानी है।

और ऊँटनी का दूध गाय और भैंस के दूध से भी अधिक होता है, तो भी इनका दूध गाय के सदृश नहीं। ऊँट और ऊँटनी के गुण भार उठाकर शीघ्र पहुँचाने के लिए प्रशंसनीय हैं।

अब एक बकरी कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक पाँच सेर दूध देती है, इसका मध्यभाग प्रत्येक बकरी से ३ सेर दूध होता है और न्यून-से-न्यून तीन महीने और अधिक से अधिक पाँच महीने तक दूध देती है, तो प्रत्येक बकरी के दूध देने में मध्यभाग चार महीने हुए। वह एक मास में २। सवा दो मन और चार मास में ९ नव मन होता है। पूर्वोक्त प्रकारानुसार इस दूध से १८० एक सौ अस्सी मनुष्यों की तृप्ति होती है और एक बकरी एक वर्ष में दो बार ब्याती है। इस हिसाब से एक वर्ष में एक बकरी के दूध के एक बार भोजन से ३६० तीनसौ साठ मनुष्यों की तृप्ति होती है। कोई बकरी न्यून-से-न्यून चार वर्ष और कोई अधिक-से-अधिक ८ आठ वर्ष तक ब्याती है, इसका मध्य भाग छह वर्ष हुआ, तो जन्मभर के दूध से २,१६० दो हज़ार एक सौ साठ मनुष्यों का एक बार के भोजन से पालन होता है।

प्रमाणित करने के लिए दोनों के दूध की गुणवत्ता के अन्तर को जानना आवश्यक है। पशु के गुण-दोषों का प्रभाव उसके दूध में देखा जा सकता है और इसे जानने के लिए उसकी सन्तान में अन्तर को देखना आवश्यक है।

३. गाय का तीन दिन का बछड़ा उछलता-कूदता चलता है, जबकि भैंस का पाड़ा तीस दिन का भी जड़-सा पड़ा रहता है। इससे स्पष्ट है कि गाय का दूध पीने से स्फूर्ति आती है और भैंस का दूध पीने से आलस्य आता है।

४. बीस भैंसों के बीच में पाड़े को छोड़ा जाए तो वह सीधा अपनी माँ के पास नहीं पहुँचेगा, जबकि बछड़ा ५० गायों के बीच में छोड़ा जाने पर भी सीधा अपनी माँ के पास पहुँच जाएगा। इससे गाय का दूध पीने से बौद्धिक स्तर की उत्कृष्टता प्रत्यक्ष सिद्ध है। पाड़े में तो दूर से अपनी माँ को पहचानने तक की भी बुद्धि नहीं होती।

५. गाय के बछड़ों के नाम रख दिये जाएँ तो वे अपना नाम पुकारे जाते ही दौड़कर पुकारनेवाले के पास पहुँच जाते हैं, परन्तु भैंस और उसके पाड़े में अपने नाम को सुनकर कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी, क्योंकि उनमें नाम को पहचानने की क्षमता का विकास नहीं होता।

६. राजस्थान के बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर आदि जिलों में एक

अब उसके बच्चा-बच्ची मध्यभाग से २४ चौबीस हुए, क्योंकि कोई न्यून-से-न्यून एक और कोई अधिक-से-अधिक तीन बच्चों से

गाय के गले में घण्टी बाँध देते हैं। हर ग्वाले की गाएँ घण्टीवाली गाय के साथ ही मीलों का चक्कर काटकर नियत समय पर घर वापस पहुँच जाती हैं। एक भी गाय कम न होगी, न बढ़ेगी, परन्तु केवल दस भैंसों को घण्टी बाँधकर छोड़ा जाएगा तो भी एक साथ नहीं आएँगी। देर तक इधर-उधर भटककर आगे-पीछे आएँगी--न समय का ज्ञान, न स्थान की पहचान और न समूह की जानकारी।

७. गाय का दूध तो उत्तम गुणों की खान है ही, उसका गोबर और मूत्र भी भैंस की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है। गाय के गोबर की खाद खेती में तीन साल तक काम देती है, पर भैंस के गोबर की खाद दो साल बाद बेकार हो जाती है। गाय के गोबर में एक बड़ा गुण यह है कि वह अपने-आपमें कीटनाशक है। आस्ट्रेलिया में फसल पर गोमूत्र स्प्रे करके कीटनाशक दवा का काम लिया जाता है।

८. गोमूत्र महान् ओषधि है। आयुर्वेद शास्त्र में गोमूत्र से अथवा उसके योग से तैयार ओषधियों से पचासों रोगों की चिकित्सा का उल्लेख हुआ है।

९. भारत में आज भी ७५ प्रतिशत खेती बैलों से हो रही है। जैसी और जितनी उत्तम खेती गो-जायों से हो सकती है वैसी और उतनी उत्तम खेती भैंसे नहीं कर सकते।

१०. देसी गाय कड़ी धूप सहन कर सकती है। सूरज की किरण सहन करने से दूध नीरोग होता है, अतः वह अधिक स्वास्थ्यप्रद होता है। भैंस तथा संकर गाय कड़ी धूप सहन नहीं कर सकते।

११. दिनभर कड़ी धूप में बैल काम कर सकता है। भैंसा कड़ी धूप में देर तक नहीं टिक सकता।

१२. भैंसे की गाड़ी नाले में फँस जाए तो भैंसे बैठ जाएँगे पर बैल निकाल ले-जाएँगे।

१३. भैंस का ही नहीं, संकर गाय का नर भी खेती जोतने में अधिक काम नहीं देता। इसके लिए देसी गाय की नस्ल ही उपयोगी होती है।

१४. भैंस के घी के कण कड़े होते हैं जो आसानी से नहीं पचते। इसलिए वे बाहर निकल जाते हैं। भैंस के दूध को गरम करने से उसके विटामिन नष्ट हो जाते हैं। गाय के दूध में ऐसा नहीं होता। गाय के दूध के कण सूक्ष्म और सुपाच्य होते हैं, अतः वे मस्तिष्क की सूक्ष्मतम नाड़ियों में पहुँचकर मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करते हैं।

१५. इंटरनेशनल कार्डियोलोजी कान्फ्रेंस के अध्यक्ष डॉ० शान्तिलाल शाह के मत में भैंस के दूध में लाँग चेन फैट होती है, जो शरीर की नसों में जम जाती है और हार्ट-अटैक का कारण बनती है। हृदयरोगियों

ब्याती है। उनमें से दो का अल्पमृत्यु समझो, रहे २२ बाईस, उमें से १२ बकरियों के दूध से २५,९२० पच्चीस हज़ार नवसौ बीस मनुष्यों का एक

के लिए गाय का दूध विशेषरूप से उपयोगी है।

१६. गाय के दूध में क्युरोटिन नामक पीला पदार्थ रहता है जो आँखों की ज्योति बढ़ाता है।

१७. भारत का दुर्भाग्य है कि उसने अपने ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग छोड़ दिया, परन्तु भारतेतर देशों के लोग उसी का अनुसरण करके लाभान्वित हो रहे हैं। संसार के सभी विकसित देशों—इंगलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान, फ्रांस, रूस आदि में सर्वत्र गाय के ही घी-दूध का प्रयोग होता है। कोई भी भैंस को नहीं रखता। एक सौ पचास वर्ष में अंग्रेजी राज में लाखों की संख्या में गाय और साँड विदेशों में गये, भैंस एक भी नहीं। भैंस वहाँ के अजायबघरों या चिड़ियाघरों में प्रदर्शनार्थ रक्खी जाती है।

१८. गाय का दूध जीवन-शक्ति प्रदान करनेवाले द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ है।

—चरक सूत्रस्थान २।१८

१९. गाय का दूध पथ्य, रसायन, बलवर्धक, हृदय के लिए हितकर, मेधाबुद्धि को बढ़ानेवाला, आयुप्रद, पुंसत्वकारक, वात तथा रक्तपित्त के विकार को नष्ट करनेवाला होता है। सफेद गाय का दूध वातनाशक, काली गाय का दूध पित्तशामक तथा लाल गाय का दूध कफनाशक होता है।

—धन्वन्तरि निघण्टु, ७०।१५१, १५२

२०. सदैव गाय का दूध सेवन करने से सब प्रकार के रोग तथा बुढ़ापा नष्ट होता है। काली गाय का दूध अधिक गुणवाला होता है।

—भावप्रकाश निघण्टु दुग्धवर्ग ९-१०

२१. दही—गाय का दही, विशेष मीठा, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, हृदय को प्रिय, पुष्टिकारक और वातनाशक है। गाय का दही सर्वोत्तम है।

—दही, दधिवर्ग १०

२२. घी—गाय का घी विशेषकर नेत्रों को हितकारी, अग्निप्रदीपक, पाक में मधुर, शीतल, वात-पित्त-कफ़ नाशक, बलवर्धक, पवित्र, आयुवर्धक, रसायन, सुगन्धयुक्त, सुन्दर और सम्पूर्ण घृतों में उत्तम है।

—वही, घृतवर्ग ४-६

२३. मक्खन—गाय का मक्खन हितकारी, वृष्य, रंग को निखारनेवाला, बलकारी, अग्निप्रदीपक, ग्राही, वात-पित्त-रक्तविकार, क्षय, बवासीर, लकवा तथा खाँसी को नष्ट करनेवाला है। यह मक्खन बालकों और वृद्धों को हितकारी है। बच्चों के लिए तो अमृत-तुल्य है।

—वही, नवनीतवर्ग १-२

२४. तक्र—तक्र का सेवन करनेवाले मनुष्य कदापि रोगी नहीं

दिन पालन होता है। उसकी पीढ़ी-पर-पीढ़ी के हिसाब लगाने से असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और बकरे भी बोझ उठाने आदि प्रयोजनों

होते। तक्र सेवन से नष्ट रोग पुनः नहीं उभरते। जैसे देवताओं के लिए अमृत होता है, वैसे ही पृथिवी के मनुष्यों के लिए तक्र होता है।

—वही, तक्र वर्ग-७

लोक में प्रसिद्ध है—**तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्।**

तक्र या छाछ के पाँच भेद हैं—

१. घोल—दही को बिना पानी डाले, मलाई समेत मथने पर जो द्रव्य तैयार होता है, उसे 'घोल' कहते हैं।

२. मथित—दही के ऊपर की मलाई उतारकर बिना पानी डाले बिलोया हुआ 'मथित' कहाता है।

३. मट्ठा—जिसे एक चौथाई भाग पानी डालकर मथा जाए वह तक्र अथवा मट्ठा कहलाता है।

४. उदश्वित्—आधा पानी डालकर मथा हुआ दही 'उदश्वित्' कहाता है।

५. छाछ या छच्छिका—जिस दही को मथकर मक्खन निकाल लिया गया हो और काफी पानी डाला गया हो, उसे 'छाछ या छच्छिका' कहते हैं।

२५. गाय का गोबर और मूत्र मनुष्य के त्वचा रोगों के उपचार में विशेष उपयोगी है। गाय के गोबर का काम करनेवाले के हाथों में खुजली, दाद और एग्ज़िमा-जैसे रोग कभी नहीं होते। गाय के गोबर में दुर्गन्ध तो होती ही नहीं, उससे लिपे स्थान पर कीटाणु, मक्खी, मच्छर आदि नहीं आते। वस्तुतः आयुर्वेद के ग्रन्थों में गाय के दूध आदि से होनेवाले रोगों का उपचार-सम्बन्धी जो ज्ञान बीजरूप में उपलब्ध है उसका विधिवत् विकास होने पर चिकित्सा की ऐसी विधियाँ निकल सकती हैं जिनका अभी तक मूल्यांकन नहीं हो पाया है।

लाख दुःखों की एक दवा—गोदूध का मट्ठा—छाछ

दही को मथकर मक्खन निकाला गया पौष्टिक पेय 'मट्ठा' कहलाता है। यह सभी के लिए प्रायः समानरूप से हितकारी होता है। इसका उपयोग गाँवों में अतिप्राचीन काल से होता आया है। आयुर्वेद के प्रवर्तक आचार्य धन्वन्तरि के अनुसार इसकी नौ किस्में होती हैं—मथित, गोरस, घोल, द्रव, विलोडित, श्वेत, दंडाहत, तक्र तथा छाछ।

इनमें सर्वोत्तम मट्ठा गाय के दही से तैयार होता है जिसकी तासीर दही की कोटि पर निर्भर करती है। इसमें विद्यमान लैक्टिक नाम के जीवाणु के कारण शरीर में रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जिससे लोग

में आते हैं और बकरा-बकरी और भेड़-भेड़ी के ऊन के वस्त्रों से मनुष्यों को बड़े-बड़े सुख-लाभ होते हैं। यद्यपि भेड़ी का दूध बकरी के दूध

स्वस्थ और दीर्घायु रहते हैं। बूरा (शक्कर) के साथ तो इसका सेवन उत्तम पाचक सिद्ध होता है। इसके नियमित उपयोग से आँखों की ज्योति, दाँतों की मजबूती आदि यथावत् रहती है, साथ ही यह अरुचि, पोलियो, मंदाग्नि, उलटी, वात, बवासीर, रक्तचाप, संग्रहणी, वायुगोला, अतिसार, प्रमेह, रक्तसंचार, कोढ़, पेट की गड़बड़ी, पेटदर्द, तिल्ली, प्लीहा, मोटापा, मूत्ररोग, प्यास इत्यादि में भी गुणकारी है।

औषधीय उपयोग

इसके अनेक औषधीय उपयोगों में से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

* अजीर्ण में आँवले के नरम-नरम पत्ते लेना लाभकारी है। देह-दाह, शारीरिक शैथिल्य चेहरे की चमक इत्यादि में गाय के ताज़ा मट्ठे में कपड़ा भिगोकर हल्के हाथ से मलना अचूक दवा है।

* दमा में काली मिर्च, नमक और जीरा मिलाकर मट्ठे का सेवन मुफ़ीद है। सिरदर्द में जायफल का एक चुटकी चूर्ण मट्ठे के साथ सेवन करना उपकारी है। सिर के आधे भाग में दर्द में चावल एवं मिश्री मिलाकर दो तीन दिनों तक सूर्योदय से पूर्व लेना लाभप्रद है।

* भूख बढ़ाने के लिए हरड़, सौंठ और काला जीरा के चूर्ण एवं बेल का गूदा छाछ में मिलाकर सेवन करना फायदेमंद है।

* खूनी पेचिश में इसके साथ चुटकीभर जावित्री-चूर्ण लेना रामबाण है।

*पेट में मरोड़ में मेथी के साथ इसका सेवन लाभप्रद है, जबकि दस्त में मधु के साथ। संग्रहणी में सौंठ के चूर्ण के साथ ताज़ा मट्ठा थोड़ी-थोड़ी देर पर पिलाते रहना स्वास्थ्यप्रद है।

* मट्ठा बनाकर रात्रिभर छोड़ देने के बाद सुबह इससे बाल धोने से बालों के साथ-साथ मस्तिष्क के लिए भी टॉनिक है।

इसके साथ आधा चम्मच त्रिफला अथवा आँवला-चूर्ण छोटी पिप्पली दो चुटकी लेना बादी और खूनी, दोनों तरह के बवासीर में वरदान है।

* कफ एवं खाँसी में अजवायन और काला नमक डालकर अथवा अदरक का रस मिलाकर एवं गुनगुना करके सेवन करना उपयोगी है।

* अतिसार में बेर के पत्तों का चूर्ण और रक्तातिसार में आधा चम्मच आम की पिसी हुई गुठली छाछ में मिलाकर सेवन करना महौषध है।

* मोटापा दूर करने के लिए इसका प्रतिदिन तीन बार सेवन

से कुछ कम होता है, तथापि बकरी के दूध से उसके दूध में बल और घृत अधिक होता है। इसी प्रकार अन्य दूध देनेवाले पशुओं के दूध से भी अनेक प्रकार के सुख-लाभ होते हैं।

परमौषध है। नशाखोरी से बचने के लिए इसका सेवन लाभप्रद है।

सावधानी

इसके लिए मिट्टी, चीनी-मिट्टी, शीशे और पत्थर के बरतन ही उपयुक्त हैं। यदि इसके उपयोग से अधिक पेशाब, चक्कर, दस्त इत्यादि की शिकायत हो तो सेवन कुछ दिनों तक रोक देना बेहतर है।

इसका सेवन दो-तीन वर्ष के बच्चे, घाव, रक्तपित्त, ज्वर, दाह, दुर्बलता एवं क्षयरोग में चिकित्सक की सलाह के बिना वर्जित है। इसके साथ घी लेना अपथ्य है।

छाछ शीतल, हल्की, पित्त, तृष्णा तथा वातनाशक और कफ़कारक है। नमक डालकर सेवन करने से अग्नि का दीपन करती है।

—वही, तक्रवर्ग १-१०

क्योंकि गाय का दूध श्रेष्ठ है, अतः उस दूध का तक्र भी श्रेष्ठ है।

तक्र शीतकाल में अमृततुल्य है। अग्नि की मन्दता, वातरोग, अरुचि, नाड़ियों के अवरोध आदि में सर्वश्रेष्ठ है। तक्र विष, वमन, जी-मिचलाना, विषम ज्वर, पाण्डुरोग, मेद, चर्बी, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, प्लीहा, प्रमेह, गुल्म, अतिसार, शूल, उदर रोग, श्वेत कुष्ठ, सूजन, प्यास तथा कीड़ों को नष्ट करता है।

—वही तक्रवर्ग १०-१५

गाय का मूत्र और गोबर भी अनेक प्रकार के रोगों की चिकित्सा में काम आता है। गोमूत्र पान करने से खुजली, शूल, मुखरोग, नेत्ररोग, गुल्म, अतिसार, वातरोग, खाँसी, कोढ़, उदररोग, कृमि, पाण्डुरोग नष्ट हो जाते हैं। सब प्रकार के मूत्रों में गोमूत्र सबसे उत्कृष्ट है। इसलिए जहाँ मूत्र कहा हो वहाँ केवल गोमूत्र ही लेना चाहिए।

२६. गोमूत्र कान का दर्द, आँख में जलन, मोतियाबिन्द, अफारा, कामलारोग, प्लीहा, खाँसी, सूजन आदि रोगों की चिकित्सा में उपयोगी है।

२७. गाय का मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी इन सबको लेकर विशेष विधि से ओषधि तैयार की जाती है जिसे पञ्चगव्यघृत कहते हैं। यह पञ्चगव्यघृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगन्दर इत्यादि रोगों में सहायक है। मृगी तथा पागलपन से पीड़ित रोगियों के लिए यह एक उत्कृष्ट ओषधि है। मन तथा इन्द्रियों की विकृति दूर करने तथा चिन्ता को दूर करने में यह घृत परम सहायक है।

—रसतन्त्रसार, घृतप्रकरण-६

जैसे ऊँट-ऊँटनी से लाभ होते हैं, वैसे ही घोड़े-घोड़ी और हाथी आदि से अधिक कार्य सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार सुअर, कुत्ता, मुर्गा, मुर्गी और मोर आदि पक्षियों से भी अनेक उपकार होते हैं। जो पुरुष हरिण और सिंह आदि पशु और मोर आदि पक्षियों से भी उपकार लेना चाहें तो ले-सकते हैं, परन्तु सबका पालन उत्तरोत्तर समयानुकूल होवेगा। वर्तमान में परमोपकारक गौ की रक्षा में मुख्य तात्पर्य है। दो ही प्रकार से मनुष्य आदि की प्राणरक्षा, जीवन, सुख, विद्या, बल और पुरुषार्थ आदि की वृद्धि होती है—एक अन्नपान, दूसरा आच्छादन। इनमें से प्रथम के बिना मनुष्यादि का सर्वथा प्रलय और दूसरे के बिना अनेक प्रकार की पीड़ा होती है।

देखिए, जो पशु निःसार घास, तृण, पत्ते, फल-फूल आदि खावें और सार दूध आदि अमृतरूपी रत्न देवें, हल-गाड़ी में चलके अनेकविध अन्न आदि उत्पन्न कर सबके बुद्धि, बल, पराक्रम को बढ़ाके नीरोगता करें, पुत्र-पुत्री और मित्र आदि के समान पुरुषों के साथ विश्वास और प्रेम करें, जहाँ बाँधे वहाँ बँधे रहें, जिधर चलावें उधर चलें, जहाँ से हटावें

---

२८. गोघृत के जलाने से उत्पन्न चार प्रकार की गैसें पहचानी जा चुकी हैं। घी जलाने से ऐसिटिलीन का निर्माण होता है जो अशुद्ध वायु को अपनी ओर खींचकर उसे शुद्ध करती है।

२९. रूस के वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार गाय के गोबर से लिपी-पुती दीवारें अणु-विस्फोटकों के घातक विकिरणों (Radio Activities) की रोकथाम करती हैं।

३०. गाय के ताज़े गोबर की गन्ध से मलेरिया के रोगाणु नष्ट हो जाते हैं।

३१. जिस घर में गाय रहती है वहाँ क्षय (तपेदिक) का प्रवेश नहीं होता।

उपर्युक्त गुणों के कारण ग्रन्थकार का यह कथन कि ''इसलिए आर्यों ने गाय सर्वोत्तम मानी है'' अक्षरशः सत्य है।

प्रत्येक पदार्थ में अपने-अपने विशिष्ट गुण होते हैं। ऊँट-ऊँटनी भार उठाने और उसे शीघ्र पहुँचाने में गाय-बैल की अपेक्षा अधिक समर्थ हैं। पर ऊँटनी का दूध गाय की अपेक्षा अधिक होने पर भी मनुष्य के लिए उतना उपयोगी नहीं होता। बकरी का दूध पित्त, ज्वर, क्षय, खाँसी आदि में लाभकारी होता है। वनस्पतियाँ चरने तथा पानी कम पीने के कारण बकरी का दूध अलग ही प्रभाव रखता है। बचपन से ही बकरी का दूध सेवन करनेवाले बच्चों को अनेक रोगों से मुक्ति मिली रहती है। भेड़ व मृगी का दूध नमकीन और हृदय के लिए हानिकारक होता है। भेड़ का दूध मधुर, रूखा, गरम और वातरोग नाशक होता है, किन्तु

वहाँ से हट जावें, देखने और बुलाने पर समीप चले आवें, जब कभी व्याघ्रादि पशु व मारनेवाले को देखें अपनी रक्षा के लिए पालन करनेवाले के समीप दौड़कर आवें कि यह हमारी रक्षा करेगा। जिनके मरे पर चमड़ा भी कंटक आदि से रक्षा करे, जङ्गल में चरके अपने बच्चे और स्वामी के लिए दूध देने को नियत स्थान पर नियत समय चले आवें, अपने स्वामी की रक्षा के लिए तन-मन लगावें, जिनका सर्वस्व राजा और प्रजा आदि मनुष्यों के सुख के लिए है, इत्यादि शुभगुणयुक्त, सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर, सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापीजन होंगे?

रक्तपित्त में लाभकारी नहीं होता। बकरी की अपेक्षा मृगी का दूध अधिक गुणकारी होता है।

घोड़ी का दूध रूखा, गरम, वातनाशक, कफनाशक, बलशाली तथा बवासीर को नष्ट करनेवाला होता है। ऊँटनी का दूध कृमि, कफ़, कुष्ठ, सूजन तथा उदर-रोगों में लाभ पहुँचाता है।

गधी का दूध मीठा, बल प्रदान करनेवाला, रूखा, खारी, कफ़-वात-विनाशक और बुद्धि को मन्द करनेवाला होता है। शीतला (चेचक) रोग में विशेष उपयोगी होता है। यह उसकी रामबाण ओषधि है। हथिनी का दूध कसैला, वीर्यवर्द्धक और नेत्रों के लिए हितकारी होता है, पर उनमें वे अन्यान्य गुण नहीं होते जो गाय के दूध में होते हैं। सूअर और मुर्गा इधर-उधर पड़ी गन्दगी को दूर करके वातावरण को शुद्ध रखने में सहायक होते हैं। कुत्ते में चौकीदारी और स्वामीभक्ति का बड़ा भारी गुण होता है। मनुष्य चोरी या हत्या करता है और कुत्ता चोर या हत्यारे को पकड़वाने में पुलिस की सहायता करता है। अपने-आपमें सभी की उपयोगिता है। इसलिए ग्रन्थकार सिद्धान्तरूप में प्राणिमात्र की हत्या के विरोधी थे, परन्तु गाय की महती उपयोगिता के कारण उन्होंने लिखा कि 'वर्तमान में परमोपकारक गौ की रक्षा में मुख्य तात्पर्य है।'

मनुष्य के सुखी जीवन के लिए वायु तथा जल के बाद पेट भरने के लिए दूध और अन्न तथा तन ढाँपने के लिए वस्त्र परमावश्यक हैं। जल और वायु ईश्वरीय व्यवस्था में सहज उपलब्ध हैं। अन्न और वस्त्र हमें पशुपालन से प्राप्त होते हैं। अपने भरण-पोषण के लिए पशु हमसे कुछ नहीं माँगते, परन्तु जब हम अपने स्वार्थ के लिए उन्हें अपने खूँटे से बाँधते और बाड़े में बन्द कर लेते हैं तब ये हमपर निर्भर होते हैं, तथापि ये जितना देते हैं, उसकी तुलना में लेते बहुत कम है।

मनुष्य और बैल सहकारी खेती (Co-operative farming) का अनोखा आदर्श प्रस्तुत करते हैं। दोनों के फलस्वरूप जब फ़सल तैयार

इसीलिए यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि—
'यजमानस्य पशून् पाहि' हे पुरुष! तू इन पशुओं को कभी मत मार और यजमान, अर्थात् सबके सुख देनेवाले जनों के सम्बन्धी पशुओं की रक्षा कर, जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे और इसीलिए ब्रह्मा से लेके आज

होती है तो ऊपर का भाग (दाने) मनुष्य खा लेता है और नीचे का भाग (भूसा) बैल और उसकी माँ गाय खा लेते हैं। गोमाता उसका दूध बनाकर फिर मनुष्य को लौटा देती है और बैल मण्डी में ले-जाकर बेचने में सहायता करता है। गाय के पेट की रसायनशाला में पहुँचकर घास-फूँस से अमृततुल्य दूध तैयार होकर बाल-वृद्ध सबका पोषण करता है। परस्पर प्रेमपूर्वक रहने की शिक्षा देने के लिए भी परमेश्वर को **'वत्सं जातमिवाघ्न्या'** का उदाहरण देना पड़ा। इतना बड़ा उपकार करनेवाली गौ का गला काटनेवालों के लिए ऋषि ने लिखा है कि 'क्या उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी, दु:ख देनेवाले और पापीजन होंगे?'

यजमानस्य पशून् पाहि—विशेषत: यज्ञपरक माने जानेवाले यजुर्वेद के इस प्रथम मन्त्र में 'पशून् पाहि' का निर्देश होने और गाय के लिए अनेकत्र 'अघ्न्या' शब्द का प्रयोग होने से और गाय की हत्या करनेवाले को लिए मृत्युदण्ड का विधान (अन्तकाय गोघातकम्) होने पर भी मध्यकालीन आचार्यों एवं तदनुयायी पाश्चात्य विद्वानों ने सैकड़ों स्थलों में 'अध्वर' नाम से अभिहित यज्ञों में गोवध को मान्यता देकर वेदों को बदनाम किया। ऋग्वेद के प्रसिद्ध विवाहसूक्त अथवा सूर्यासूक्त (ऋ० १०।८५।१३) के आधार पर भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने विवाह के अवसर पर गौवों अथवा साँड़ों के वध का प्रतिपादन किया है। एतदनुसार इन पशुओं को भोजन के निमित्त ही काटा जाता था (The marriage ceremony was accompanied with slaying of oxen, clearly for food.) अन्त्येष्टि के एक मन्त्र (ऋ० १०।१६।७) के आधार पर मैक्डानल ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'मृतक के दाह-संस्कार में एक गाय का वध अनिवार्य था, क्योंकि उसके मांस का उपयोग शव को लपेटने के लिए किया जाता था' (The ritual of cremation of the dead required the slaughter of a cow as an essential part, flesh being used to envelop dead body—Vedic Index), परन्तु इनके पूर्वापर प्रसंगो से इन अर्थों का सामंजस्य नहीं होता। ग्रन्थकार के वेदभाष्यों से इन भ्रान्तियों का निराकरण हो जाता है। महाभारतकार ने बहुत पहले लिख दिया था—
''धूर्त्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु विद्यते।'' (शान्तिपर्व २६५।१०)

ऋषि दयानन्द के अनुसार ''ब्रह्मा से लेके आजपर्यन्त आर्य लोग

पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं और इनकी रक्षा में अन्न भी महंगा नहीं होता, क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्री को भी खान-पान में मिलने पर न्यून ही अन्न खाया जाता है और अन्न के कम खाने से मल भी कम होता है। मल के न्यून होने से दुर्गन्ध भी न्यून होती है, दुर्गन्ध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि भी विशेष होती है। उससे रोगों की न्यूनता होने से सबको सुख बढ़ता है।

इससे यह ठीक है कि गो-आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का नाश हो जाता है, क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं, तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती होती है। देखो, इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ७००

पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं।'' साधारणतया ठीक होने पर भी यह सर्वांश में सत्य नहीं है। महाभारत से उद्धृत प्रमाण से प्रतीत होता है कि महाभारत काल में और उससे कुछ पहले ही यज्ञों में पशुबलि होने लगी थी। ऋषि के अनुसार ''बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्त्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे जो बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये (बढ़ गये)।'' पढ़े-लिखे प्रायः सभी लोग यही मानते हैं कि वैदिक काल में यज्ञों में पशुबलि सामान्य बात थी। उत्तरप्रदेश के तत्कालीन शिक्षामन्त्री एवं प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० सम्पूर्णानन्द ने हमें अपने १५ फरवरी १९५१ के पत्र में लिखा था ''अनेक प्रमाणों के आधार पर मैं यह मानता हूँ कि वैदिक काल में मद्य-मांसादि का प्रयोग होता था। पशुबलि भी होती थी।'' यही बात हमें २ फरवरी १९५० के पत्र में भारतीय विद्या भवन के संस्थापक और स्वतन्त्र भारत के प्रथम कृषिमन्त्री व प्रख्यात साहित्यकार डॉ० कन्हैयालाल मुंशी ने लिखी थी। कांची कामकोटिपीठ के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती ने २२ जनवरी १९८१ को एक भेंट में हमें बताया था कि शास्त्रों में जहाँ कहीं भी गोवध का निषेध किया है वह गोमांस खाने के सन्दर्भ में किया है, यज्ञ के निमित्त गोवध का स्पष्ट विधान है। ''शास्त्रों में ऐसा गौ के हित में किया गया है, क्योंकि यज्ञ में आहुति के लिए मारी गई गौ को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।'' स्पष्ट है कि ये लोग आज भी वहीं खड़े हैं जहाँ सैकड़ों वर्ष पूर्व उन्हें सायण ने खड़ा कर दिया था। १३ फरवरी १९७९ को दिल्ली में हुए (Indian History and Culture Society) के वार्षिक अधिवेशन में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था—Beef eating was a part of Socio-Economic life of the people of ancient India. Why should it then not be mentioned in history books?

सात सौ वर्ष के पूर्व मिलते थे, उतना दूध-घी और बैल आदि पशु इस समय दशगुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते, क्योंकि ७०० सात सौ वर्ष के पीछे इस देश में गवादि पशुओं को मारनेवाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आ बसे हैं। वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़, मांस तक भी नहीं छोड़ते, तो '**नष्टे मूले नैव पत्रं न पुष्पम्**' जब कारण का नाश कर दे तो कार्य नष्ट क्यों न हो जावे? हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं? हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर जोकि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उनपर तेरी प्रीति नहीं है? क्या उनके लिए तेरी न्यायसभा बन्द हो गई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता और उनकी पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया का प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।

इस विषय में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय में संयुक्त शिक्षा सचिव डॉ० चतुर्वेदी ने हमें लिखा—

"There is general unanimity among historians and archaeologists about the historicity in regard to beef-eating in Vedic Age. There are a number of references to this in literature on Ancient India like 'Vedic Index of Names and subjects'."

आज समस्त भारत के विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्व-विद्यालयों में यही सब पढ़ाया जा रहा है। सच तो यह है कि आधुनिक युग में दयानन्द से बढ़कर गाय का हितैषी दूसरा कोई नहीं हुआ।

परमेश्वर पर आरोप—''हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर जो बिना अपराध मारे जाते हैं दया नहीं करता? क्या इनपर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इनके लिए तेरी न्यायसभा बन्द हो गई है? क्यों इनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता?'' यहाँ खुल्लमखुल्ला ईश्वर की न्यायसभा को चुनौती दी जा रही है। उसपर क्रूरता, निर्दयता, पक्षपात और अत्याचार के आरोप लगाये जा रहे हैं। उसे बहरा बताया जा रहा है और यह सब कौन कर रहा है? वह जिसने बड़ी-से-बड़ी आपत्ति आने पर भी कभी प्रभु से शिकायत नहीं की। वह जिसका परमेश्वर की दया और न्यायप्रियता पर इतना विश्वास है कि मृत्यु के समय असह्य वेदना से पीड़ित होने की अवस्था में भी यही कहता है—''हे दयामय! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की''। गौवों पर हो रहे अत्याचारों के कारण कितना दुखी होगा दयानन्द का हृदय जब उसने अपने प्रियतम के लिए इतने कठोर शब्दों का प्रयोग किया होगा। दयानन्द के अनुसार परमेश्वर दुष्कर्म में प्रवृत्त होनेवाले के मन में 'भय, शङ्का और लज्जा का भाव

अथ समीक्षायां हिंसक-रक्षक-संवाद

हिंसक—ईश्वर ने सब पशु आदि सृष्टि मनुष्य के लिए रची है और मनुष्य अपनी भक्ति के लिए। इसलिए मांस खाने में दोष नहीं हो सकता।

रक्षक—भाई! सुनो, तुम्हारे शरीर को जिस ईश्वर ने बनाया है क्या

उत्पन्न करता है' (सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ७)। इसलिए दयानन्द परमेश्वर को उसके कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए उससे जवाब तलबी करता है—''क्यों तू इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया का प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन, मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता जिससे वे इन कार्यों से बचें?''

मांस मनुष्य का भोजन नहीं है—संसार में जो पशु घास खाते हैं, वे मांस नहीं खाते और जो मांस खाते हैं वे घास नहीं खाते। घास खानेवाले प्राणी मांस की ओर और मांस खानेवाले घास की ओर देखते भी नहीं। इसी प्रकार फल खानेवाले जीव उन पदार्थों को छोड़कर घास-पात नहीं खाते, परन्तु मनुष्य एक विलक्षण प्राणी है जो घास-पात, फल-मूल, दूध-अन्न सभी को उदरस्थ कर लेता है। यहाँ तक कि जिस वस्तु को देखकर घृणा होनी चाहिए उसे भी प्रसन्नतापूर्वक खाने का अभ्यस्त हो गया है। इस विषय में पशु-पक्षी हमसे अच्छे हैं। भोजन की दृष्टि से स्थलचर पशुओं के तीन भेद हैं—मांसभक्षी, वनस्पतिभक्षी और फलभक्षी। बिल्ली, कुत्ता, सिंह आदि जितने हिंस्र जन्तु हैं वे सब मांसभक्षी हैं—उनका स्वाभाविक भोजन मांस ही है। इसीलिए उनके दाँत नुकीले, लम्बे और दूर-दूर होते हैं।

ये जीव दाँतों से मांस को फाड़-फाड़कर निगल जाते हैं। इस प्रकार उनके दाँतों की रचना से यह पता लगता है कि प्रकृति ने उन्हें मांसाहारी बनाया है। गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि जीव वनस्पतिभक्षी हैं। इसलिए उनके दाँतों की रचना ऐसी है जिससे वे घास को सहज ही उखाड़कर या काटकर खा जाते हैं। यह उनके मुख्यतः वनस्पतिभक्षी होने का प्रमाण है। मनुष्य के दाँत पूरी तरह से न मांसभक्षी पशुओं से मिलते हैं और न वनस्पतिभक्षी पशुओं से। उनकी बनावट बहुत कुछ बन्दर आदि फलभक्षी जीवों से मिलती हैं। इसलिए वेद ने मनुष्य का स्वाभाविक भोजन **'पयः पशूनां रसमोषधीनाम्'** बताया है। मनुष्य को अपने कर्तव्याकर्तव्य, कर्म-अकर्म और विकर्म का निश्चय करने के लिए बुद्धि प्रदान की है। उसी के द्वारा उसे अपने आहार-विहार का निर्धारण करना चाहिए।

मांसाहारी प्राणियों के साथ मनुष्य की समता नहीं हो सकती, यह बात निम्नलिखित कारणों से स्पष्ट होती है—

(१) मांसाहारी प्राणी जीभ से चप-चप करके पानी पीते हैं,

उसी ने पशु आदि के शरीर नहीं बनाये हैं? जो तुम कहो कि पशु आदि हमारे खाने को बनाये हैं, तो हम कह सकते हैं कि हिंसक पशुओं के लिए तुमको उसने रचा है, क्योंकि जैसे तुम्हारा चित्त उनके मांस पर चलता है, वैसे ही सिंह, गृध्र आदि का चित्त भी तुम्हारे मांस खाने पर चलता है, तो उनके लिए तुम क्यों नहीं?

जबकि शाकाहारी मुँह से घूँट-भरकर पीते हैं। (२) मांसाहारी पशु अँधेरे में देख सकते हैं, मनुष्य नहीं। (३) मांसाहारी पशुओं के शरीर में पसीना नहीं आता (४)मांसाहारी पशु मैथुन के समय जुड़ जाते हैं। (५) मांसाहारी जीवों और निरामिषभोजी जीवों की अँतड़ियों और मेदे के आकार में अन्तर है।

"Comperative anatomy teaches us that man resembles the frugivorous animals in everything. All the details of his intestinal canal and above all his dentition prove it in the most decided manner." —Dr. F.A. Pouchet

पशुओं की कोई आचार-संहिता नहीं होती, परन्तु मनुष्य का व्यवहार सदा, सर्वत्र किसी-न-किसी रूप में आचार-संहिता से नियन्त्रित होता है। किसी को पीड़ा देकर—उसके प्राण हरकर अपना पेट भरना मानवीय कर्म नहीं हो सकता। किसी निरपराध के प्राण लेना पशुता है और अपने प्राण देकर किसी की रक्षा करना मानवता है। क्रूरता के बिना मांस प्राप्त नहीं होता, इसलिए मांसाहार महापाप है। मांसाहारी को शान्ति कहाँ? अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मैथ्यू आर्नल्ड ने The Light of Asia नाम से महात्मा बुद्ध की जीवनी में लिखा है—

To live on death and seek peace of mind.
What a folly I find in mankind.

मांसाहारी भी एक प्रकार से (Indirectly) शाकाहारी ही हैं क्योंकि वे बकरे, गाय, बैल आदि वनस्पतिभोजी पशुओं या पक्षियों का ही मांस खाते हैं, कुत्ते, बिल्ली, शेर, गीदड़, गिद्ध आदि मांसाहारियों का नहीं। अथवा अपने से निर्बल प्राणियों को ही अपना भक्ष्य बनाते हैं, अपने से सबलों को नहीं। मांसाहारी क्रूर होते हैं, वीर नहीं। यदि मनुष्य को बकरे को मारने के कारण दण्ड नहीं दिया जाता तो यदि कुत्ता या भेड़िया या नरभक्षी शेर गाँव में आकर मनुष्य का शिकार करता है तो उसे गोली से क्यों उड़ाया जाता है? सबको ईश्वर ने बनाया है और काटे जाने में सभी को पीड़ा होती है। 'जियो और जीने दो' को माननेवाला मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। वेद का स्पष्ट आदेश है—

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामः।

गाय, घोड़े अथवा मनुष्य को मारनेवाले को सीसे की गोली से मार देना चाहिए।

हिंसक—देखो, ईश्वर ने पुरुषों के दाँत कैसे मांसाहारी पशुओं के समान बनाये हैं। इससे हम जानते हैं कि मनुष्यों को मांस खाना उचित है।

रक्षक—जिन व्याघ्रादि पशुओं के दाँत के दृष्टान्त से अपना पक्ष सिद्ध किया चाहते हो, क्या तुम भी उनके तुल्य ही हो? देखो, तुम्हारी

मनुष्य और पशु—वस्तुतः सभी पशु किसी-न-किसी जन्म में मनुष्य थे जो पापों के फलस्वरूप वर्तमान योनियों में उत्पन्न होकर उन पापों का प्रायश्चित्त कर रहे हैं और जिनके प्रति पूर्वजन्म में इन्होंने अनुचित व्यवहार किया था या किसी प्रकार की हानि पहुँचाई थी, उनको इस जन्म में उस हानि का प्रतिफल देने आये हैं। कोई गाय के रूप में श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ के निमित्त प्रधान वस्तु घी दे रहा है और उसके जाये बैल हल चला रहे हैं, भैंस और बकरी भी दूध और घी प्रदान कर रहे हैं, भेड़ ऊन देकर सरदी से रक्षा कर रही है; घोड़ा घुड़सवारी और सेना के काम आता है और रथ खींचने का काम करता है, कुत्ता रखवाली करता है और सूअर सफ़ाई में बड़ा भारी सहयोग देता है। इसलिए इन्हें बीच में नष्ट न करके अपने कर्मों का फल भोगने और प्रायश्चित्त करने का अवसर देने के लिए पूर्ण आयु भोगने देना चाहिए। इस कारण प्राचीन आर्यों ने पशु-पालन को अपना धर्म मान लिया था और उनकी सहायता से अपनी आर्थिक समस्याओं को भी सहज हल कर लिया था।

विकासवाद के अनुसार मूल में एक कोश के अमीबा-जैसे क्षुद्र प्राणी से क्रमिक विकास होते-होते मनुष्य जैसे सर्वोत्कृष्ट प्राणी की उत्पत्ति हुई। मनुष्य का निकटतम पूर्वरूप बन्दर को माना जाता है। बन्दर निश्चय ही फलाहारी है। उससे विकसित और श्रेष्ठतम योनि होने के कारण मनुष्य का स्वाभाविक भोजन फल ठहरता है। आज भी स्वभावतः शिशु की रुचि मांस में नहीं होती।

जंगल में पेड़ों पर अनेक प्रकार के फल लगे होते हैं, पर सिंह उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। वहीं पर बन्दर भी होते हैं, पर खरगोश या हिरण को देखकर उनकी राल नहीं टपकती। प्रकृति ने जो जिसका खाद्य नियत किया है वही उसके लिए विहित है, अन्य सब निषिद्ध है। मनुष्य का खाद्य फल और अन्न है, मांस नहीं।

मांसाहारी गाय

वाशिंगटन से अस्सी किलोमीटर दूर अमरीका की एक रसायनशाला है। इस प्रयोगशाला में अमरीका ने ऐसे-ऐसे द्रव्य बनाये हैं जो स्वभाव में विचित्र वैपरीत्य पैदा करते हैं। इनमें ऐंजेल ड्रग खाकर बिल्ली चूहों को खाने की बजाय उनसे लाड़ लड़ाने लगती है। पिछले दिनों ब्रिटेन के मुनाफ़ाखोर कसाइयों ने एक नयी तरकीब निकाली है और वह यह

मनुष्यजाति उनकी पशुजाति, तुम्हारे दो पग और उनके चार, तुम विद्या पढ़कर सत्यासत्य का विवेक कर सकते हो, वे नहीं! और यह तुम्हारा दृष्टान्त भी युक्त नहीं, क्योंकि जो दाँत का दृष्टान्त लेते हो तो बन्दर के दाँतों का दृष्टान्त क्यों नहीं लेते? देखो! बन्दरों के दाँत सिंह और बिल्ली आदि के समान हैं और वे मांस नहीं खाते। मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुत-सी मिलती है, जैसे मनुष्यों के हाथ, पग और नख

कि जो गायें मर जाती हैं या दूध देना बन्द कर देती हैं उन्हें समूचा पीसकर दूसरी गायों के भोजन में एक रसायन के साथ मिलाकर खिला दिया, यह सोचकर कि मृत और अक्षम गायों का प्रोटीनयुक्त मांस दूसरी गायों का दूध बढ़ा देगा और उन्हें अधिक पुष्ट भी कर देगा। मुनाफ़ाखोर व्यापारी और फिर उद्योगपति के शैतान दिमाग़ की माया, गायों ने यह नयी तरह का भोजन रसायन की मदद से खूब खाया और इस प्रकार शाकाहारी गाय को भी मांसाहारी बना दिया गया। पूरे पश्चिम में गाय, बैल, सूअर, भेड़, बकरी, खरगोश, हिरण और मुर्गियों को फसल की तरह उगाया जाता है और फिर उसी तरह काट लिया जाता है।

गाय को मांसाहारी बनाने के परिणाम कुछ समय बाद सामने आने लगे। गायें पागल होने लगी। यूरोप में एक नये रोग ने जन्म लिया— 'Mad Cow Disease'। तब उन गायों का मांस खानेवालों में भी वह रोग फैलने लगा। 'पागल-गो-रोग' से ब्रिटेन अभी भी जूझ रहा है। 'ब्रिटिश बीफ' खरीदने से लोग कतराने लगे हैं।

बूचड़खाने की ओर ले-जाए जानेवाले हर पशु को यह आभास हो जाता है कि उसके साथ क्या होनेवाला है। विवशता में क्रोध के परिणामस्वरूप उसके शरीर की ग्रन्थियाँ 'एसीटोन' नामक एक तरह का तेज़ाब छोड़ती हैं। जिस समय उसे मारा जाता है, उस समय वह बावला हो गया होता है। यही मांस जब बाजारों में बिकने आता है तब तक विषाक्त हो चुका होता है। 'मांसाहार—सौ तथ्य' के लेखक नेमिचन्द्र जैन के अनुसार ऐसा मांस खानेवाले मनुष्य ऐंठन, तनाव, सन्निपात, मिर्गी एवं आकस्मिक मृत्यु जैसे अनेक रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं।

इस समय दिल्ली में लाखों लोग मधुमेह के शिकार हैं। मिनिसोट्टा यूनिवर्सिटी के महामारी-विज्ञान-विशेषज्ञ डॉ० डेविड स्नोडौन का कथन है कि २५०० लोगों पर २१ वर्षों तक किये गये अध्ययन से पता चला है कि न केवल मधुमेह, बल्कि गठिया, मूत्राम्ल और कई अन्य रोगों का उत्स मांसाहार में छिपा है। अमरीका में प्रतिवर्ष २७ करोड़ ५० लाख रोगी डॉक्टरों की शरण में जाते हैं। उनमें से ग्यारह में से एक उच्च रक्तचाप से पीड़ित होता है। कारण सिर्फ मांसाहार है। एक औसत अमरीकी प्रतिवर्ष लगभग १२० किलो मांस खाता है। जिसे प्राप्त करने

आदि होते हैं, वैसे ही बन्दरों के भी हैं। इसलिए परमेश्वर ने मनुष्यों को दृष्टान्त से उपदेश किया है कि जैसे बन्दर मांस कभी नहीं खाते और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो। जैसा बन्दरों का दृष्टान्त साङ्गोपाङ्ग मनुष्यों के साथ घटता है, वैसा अन्य किसी का नहीं। इसलिए मनुष्यों को अति उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ देवें।

हिंसक—देखो, जो मांसाहारी पशु और मनुष्य हैं वे बलवान् और जो मांस नहीं खाते हैं वे निर्बल होते हैं, इससे मांस खाना चाहिए।

के लिए लगभग एक टन अनाज खर्च होता है। यदि वह सीधे १२० किलो अन्न खाये तो इतने अनाज से वर्ष में आठ आदमियों का पेट भर सकता है। प्रोफेसर जार्ज वर्गस्ट्रार्म के अनुसार सिर्फ अमरीका में पशुजगत् जितने वनस्पति खाद्य का उपभोग करता है उतने से विश्व की आधी आबादी का पेट भरा जा सकता है।

स्टेट यूनिवर्सिटी आफ़ न्यूयार्क में की गई खोज से पता चलता है कि अमरीका में ४७,००० से भी अधिक ऐसे बच्चे पैदा होते हैं जिन्हें माता-पिता के मांसाहारी होने के कारण कई रोग जन्म से ही लगे होते हैं। ब्रेनबर्ग नाम का एक कीट होता है जो मांसाहारी के पेट में पहुँचकर दस वर्ष बाद अपने दुष्प्रभाव दिखाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation) के बुलेटिन संख्या ६३७ के अनुसार मनुष्य के शरीर में लगभग १६० रोग सिर्फ मांसाहार के कारण होते हैं। जर्मनी के ग्रीन ग्रुप के एक विशेषज्ञ का कहना है कि पृथिवी पर प्रदूषण एवं पर्यावरण के अस्वच्छ होते चले जाने के पीछे एक कारण यह भी है कि पिछली दशाब्दियों में लोग तेजी से मांसाहारी हुए हैं। मानव कहलानेवाले प्राणियों और उनमें भी बुद्धिजीवियों को एक स्वर से कहना चाहिए कि पशुओं की आँखें फोड़कर और उनकी हड्डी-पसली तोड़कर उन्हें कूड़े-करकट की तरह ठेलों में ठसाठस भरके बूचड़खाने में लाकर क्रूरतापूर्वक उनका वध करना बन्द किया जाए और उनके लिए विस्तृत चारागाहों की व्यवस्था की जाए।

मांसाहार बनाम शाकाहार

मांसाहारी अधिक बलवान् होता है, यह कहना या मानना प्रत्यक्ष का अपलाप करना है। धरती पर सबसे अधिक शक्तिशाली हाथी, गैंडा और गोरिल्ला हैं और ये सभी निरामिषभोजी वा शाकाहारी हैं। सबसे तेज दौड़नेवाला घोड़ा भी शाकाहारी है। शक्ति का आकलन करते हुए हम Horse Power की बात करते हैं, Lion Power की नहीं। पं० चमूपतिजी ने स्वसम्पादित 'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' की भूमिका में लिखा है—

रक्षक—क्यों अल्प समझ की बातें मानकर कुछ भी विचार नहीं करते। देखो, सिंह मांस खाता और सुअर वा अरणा भैंसा मांस कभी नहीं खाता, परन्तु जो सिंह बहुत मनुष्यों के समुदाय में गिरे तो एक या दो को मारता और एक-दो गोली वा तलवार के प्रहार से मर भी जाता है और जब जङ्गली सुअर वा अरणा भैंसा जिस प्राणिसमुदाय में गिरता है, तब अनेक सवारों और मनुष्यों को मारता और गोली बरछी तथा तलवार आदि के प्रहार से भी शीघ्र नहीं गिरता और सिंह उससे डरके अलग सटक जाता है और वह सिंह से नहीं डरता।

और जो प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखना चाहो तो एक मांसाहारी का, एक दूध, घी और अन्नाहारी मथुरा के मल्ल चौबे से बाहुयुद्ध हो तो अनुमान है कि चौबा मांसाहारी को पटक उसकी छाती पर चढ़ ही बैठेगा। पुनः परीक्षा होगी कि किस-किसके खाने से बल न्यून और अधिक होता

''पृष्ठ १८१ पर कविराज श्यामलदास के नाम ऋषि का पत्र सं० १ (यह पत्र श्री युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग २ में पृष्ठ ६९३—६९४ पर छपा है) दिया गया है। इस सम्बन्ध में मेरे पत्र के उत्तर में श्री किशोरीसिंहजी लिखते हैं—

In this connection I remember one incident that was narrated to me by the late Kaviraja Shyamal Das himself. It was as follows—

One day as Swamiji was sitting in his room in Naulakha palace in Gulab Bagh (Udaipur), His Highness Maharana Sajjan Singhji, Kaviraja Shyamal Dasji and my revered father Thakur Kishan Singhji went there for his Darshan. During the course of conversation Swamiji found fault with meat diet. Kaviraja Shyamal Dasji objected and said it gives vigour to the body. Swamiji in reply remarked that milk was more strength-giving than meat. He said that during his whole life he had never touched meat and, though older than Kavirajaji, if he were to catch two of them by wrist they would find it difficult to get loose of him. Kavirajaji's rejoinder was that this was not due to his milk diet but to his Brahmacharya from his very birth. Inspite of all this he led a vegetarian life from Maharaja Shambhu Singhji's death in 1928 Vikrami uptil his own death in 1950 Vikrami."

अर्थात् इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना का स्मरण है जो मुझे कवि-राज श्यामलदासजी ने स्वयं सुनाई थी। वह इस प्रकार है—

एक दिन जब स्वामीजी गुलाबबाग स्थित नौलखा महल में अपने कमरे में बैठे थे तो महाराजा सज्जन सिंहजी, कविराज श्यामलदासजी तथा मेरे पूज्य पिता ठाकुर किशनसिंहजी उनके दर्शनों के लिए गये।

है। भला, तनिक विचार करो कि छिलकों के खाने से अधिक बल होता है अथवा रस जो सार है उसके खाने से? मांस छिलके के समान और दूध, घी और रस सार के तुल्य हैं, इसको जो युक्तिपूर्वक खावे तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक, अन्याय अधर्म और दुष्टकर्म क्यों नहीं?

हिंसक—जिस देश में सिवाय मांस के अन्य कुछ नहीं मिलता, वहाँ वा आपत्काल में अथवा रोगनिवृत्ति के लिए मांस खाने में दोष नहीं होता।

रक्षक—यह आपका कहना व्यर्थ है, क्योंकि जहाँ मनुष्य रहते हैं, वहाँ पृथिवी अवश्य होती है। जहाँ पृथिवी है वहाँ खेती वा फल, फूल आदि होते हैं और जहाँ कुछ भी नहीं होता वहाँ मनुष्य भी नहीं रह सकते और जहाँ ऊसर भूमि है, मिष्ट जल और फलाहारादि के न होने से मनुष्यों का रहना भी दुर्घट है और आपत्काल में भी अन्य उपायों से निर्वाह कर सकते हैं, जैसे मांस न खानेवाले करते हैं और बिना मांस के रोगों का निवारण भी ओषधियों से यथावत् होता है, इसीलिए मांस खाना अच्छा नहीं।

बातचीत में स्वामीजी ने मांसाहार के दोष बताये। इसपर कविराजजी ने आपत्ति उठाई और कहा मांस खाने से मनुष्य के शरीर में शक्ति आती है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मांस की अपेक्षा दूध अधिक शक्ति देता है। उन्होंने कहा कि मैंने अपने जीवन में मांस को कभी हाथ नहीं लगाया और, यद्यपि मेरी आयु कविराजजी से अधिक है, तो भी यदि मैं अकेला आप दोनों की कलाई पकड़ लूँ तो आपको छुड़ाना कठिन होगा। इस पर कविराज का उत्तर था कि इसका कारण आपका दुग्धाहार नहीं, अपितु आजन्म ब्रह्मचर्य है। यह होते हुए भी कविराजजी महाराजा शम्भुसिंहजी के १९२८ में परलोक सिधारने के बाद से १९५० विक्रमी में अपने देहान्त तक शाकाहारी ही रहे।

सन् १९०२ में जर्मनी के विटसनटाईड नामक स्थान में अन्तरजातीय पैदल दौड़ हुई थी। यह दौड़ ड्रस्डन से बर्लिन तक १२४ मील लम्बी थी। दौड़ में ३२ पुरुषों ने भाग लिया था। गरमी का मौसम था—१८ मई सन् १९०२। दौड़नेवाले ड्रस्डन से ७.३० बजे निकले। इनमें कुछ फलहारी, कुछ शाकाहारी और कुछ मांसाहारी थे। शाकाहारियों में बर्लिन का प्रसिद्ध धावक कार्लमान भी था। बर्लिन में सबसे पहले पहुँचनेवाले जो ६ व्यक्ति थे वे सभी शाकाहारी थे। उनमें कार्लमान प्रथम था। कार्लमान ने यह दूरी २६ घण्टे ५८ मिनट में पूरी की। दौड़ की समाप्ति पर वह बिल्कुल तरोताज़ा था, किन्तु बड़े-बड़े प्रसिद्ध मांसाहारी धावक थकावट से चकनाचूर पहुँचे थे।

जोधपुर में जिस महल में ऋषि दयानन्द को ठहराया गया था उसमें

हिंसक—जो कोई भी मांस न खावे तो पशु इतने बढ़ जाएँ की पृथिवी पर भी न समावें और इसीलिए ईश्वर ने उनकी उत्पत्ति भी अधिक की है, तो मांस क्यों न खाना चाहिए?

रक्षक—वाह! वाह!! वाह!!! बुद्धि का विपर्यास आपको मांसाहार ही से हुआ होगा। देखो मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता, पुनः क्यों न बढ़ गये और इनकी अधिक उत्पत्ति इसलिए है कि एंक मनुष्य के पालन-व्यवहार में अनेक पशुओं की अपेक्षा है। इसलिए ईश्वर ने उनको अधिक उत्पन्न किया है।

हिंसक—ये जितने प्रश्न-उत्तर किये वे सब व्यवहार-सम्बन्धी हैं, परन्तु पशुओं को मारके खाने में अधर्म तो नहीं होता और जो होता है तो तुमको होता होगा, क्योंकि तुम्हारे मत में निषेध है। इसलिए तुम मत खाओ और हम खावें, क्योंकि हमारे मत में मांस खाना अधर्म नहीं है।

एक बहुत बड़ा हौज था। उसके पासवाले कुएँ पर रहट लगा था। उस रहट से हौज को बैल या भैंसा भरा करते थे, परन्तु जब तक ऋषिवर वहाँ रहे, तब तक उन पशुओं को छुट्टी पर भेज दिया गया। स्वामीजी प्रातःकाल उठकर अकेले ही उसे भर दिया करते थे।

पशुओं की संख्या में वृद्धि—सृष्टि में व्यवस्था को देखने से स्पष्ट है कि वह स्वतः उद्‌भूत न होकर किसी सर्वज्ञ-चेतन द्वारा रचित है। जो अल्पज्ञ है और इस कारण जिसके ज्ञान में न्यूनाधिक्य होता रहता है, उसके काम में भूल-चूक हो जाने से उसमें संशोधन-परिवर्तन होता रहता है, परन्तु जिसे असंख्य बार सृष्टि रचना का अनुभव है वह सब पदार्थों का ठीक-ठीक विधान, संयोजन तथा नियमन करता है। परमेश्वर के पूर्ण तथा निर्भ्रान्त होने से उसके सभी कार्य निर्दोष हैं। इसलिए सृष्टि में उपलब्ध प्रत्येक वस्तु या घटना का कोई प्रयोजन है। प्रकृति में सन्तुलन बनाये रखना उसके रचयिता का काम है, हमारा नहीं। जिसने पशुओं को पैदा किया है और अब भी कर रहा है, उनकी संख्या को नियन्त्रित करना भी उसी का काम है। एक बात निश्चित है कि पशुओं के बिना मनुष्य नहीं रह सकता, परन्तु मनुष्य के बिना पशु रह सकता है। इसीलिए सृष्टिक्रम में पहले पशु बने, तत्पश्चात् मनुष्य। यह भी प्रत्यक्ष का विषय है कि अन्यथा प्रयास करने के बावजूद संसार में स्त्री-पुरुषों की संख्या लगभग बराबर रहती है, क्योंकि जाने-अनजाने वह प्रकृति द्वारा नियन्त्रित है। ग्रन्थकार ने ठीक ही लिखा है कि मनुष्यों का मांस कोई नहीं खाता तब भी उनकी संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि नहीं होती। इसलिए पशुओं की संख्या में वृद्धि के भय से मांसाहार को उचित या आवश्यक नहीं ठहराया जा सकता।

जब मनुष्य को जीने का अधिकार है तब उसके सहवर्ती अन्य

रक्षक—हम तुमसे पूछते हैं कि धर्म और अधर्म व्यवहार ही में होते हैं वा अन्यत्र? तुम कभी सिद्ध न कर सकोगे कि व्यवहार से भिन्न धर्माधर्म होते हैं। जिस-जिस व्यवहार से दूसरों की हानि हो वह 'अधर्म' और जिस-जिस व्यवहार से उपकार हो, वह-वह 'धर्म' कहता है। तो लाखों के सुख-लाभकारक पशुओं का नाश करना अधर्म और उनकी रक्षा से लाखों को सुख पहुँचाना धर्म क्यों नहीं मानते? देखो, चोरी-जारी आदि कर्म इसीलिए अधर्म है कि इनसे दूसरे की हानि होती है।

प्राणियों को जीने का अधिकार क्यों नहीं है? क्या हमने इस समस्या पर मानवीय दृष्टि से विचार किया है कि किसी के प्राण लेना किसी व्यक्ति का मूल अधिकार कैसे हो सकता है? यदि पशुओं का कोई उच्चतम न्यायालय होता और वे अपना मामला उसके सामने रखते तो क्या वह समानता के नाम पर पशुओं को भी मनुष्यों को मारने या ऋषि दयानन्द के शब्दों में, उन्हें फाँसी पर चढ़ाने का अधिकार न दे देता? भारत की प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं ने हमें करुणा और अहिंसा की विरासत दी है, न कि क्रूरता, हिंसा और विनाश की। क्या हमने कभी यह सोचा है कि हमारी आनेवाली पीढ़ी हमारे संविधान में प्रदत्त पशुओं को मारने के मूलाधिकार का क्या उपयोग करेगी? क्या उसमें हिंसा और क्रूरता के जो संस्कार पनपेंगे वे पूरी मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध नहीं होंगे? क्या इससे युद्ध-संस्कृति को बढ़ावा मिलकर कालान्तर में हम विश्व को सर्वनाश की ऐसी दयनीय स्थिति में नहीं पहुँचा देंगे जहाँ से लौटने के लिए फिर हमारे पास कोई विकल्प नहीं रहेगा?

तीन वर्ष पूर्व आयोजित एक पशु-संरक्षण गोष्ठी में उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायामूर्ति कृष्ण अय्यर ने कहा था " मैं यह बता देना चाहता हूँ कि पशुओं को भी जीने का जन्मसिद्ध अधिकार है। मेरी राय में गोहत्या और नरहत्या में कोई भेद नहीं है।"

धर्माधर्म—निर्मल चित्त व्यक्ति ही नित्य, पवित्र परमेश्वर के अनुग्रह का पात्र होने से उसकी उपासना अथवा भक्ति का अधिकारी बनता है। उसके लिए योगदर्शन में अष्टाङ्गमार्ग का विधान किया गया है। इन आठ अङ्गों में अन्य सभी भाव तथा साधनों का अन्तर्भाव है। इनमें भी यम-नियमों का पालन किये बिना किसी का निर्मलचित्त होना सम्भव नहीं। इनमें सत्य आदि सभी यम-नियम अहिंसामूलक हैं। अहिंसा सिद्धि के हेतु ही उनका प्रतिपादन किया गया है। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। अहिंसा के प्राधान्य का उल्लेख करने के लिए ही महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में कहा है—

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत्सत्यं मतं मम॥

नहीं तो जो-जो प्रयोजन धनादि से उनके स्वामी सिद्ध करते हैं, वे ही प्रयोजन उन चोरादि के भी सिद्ध होते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि जो-जो कर्म जगत् में हानिकारक हैं वे-वे 'अधर्म' और जो-जो परोपकारक हैं वे-वे 'धर्म' कहाते हैं।

जब एक आदमी की हानि करने से चोरी आदि कर्म पाप में गिनते हो, तो गवादि पशुओं को मारके बहुतों की हानि करना महापाप क्यों नहीं? देखो, मांसाहारी मनुष्यों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं, किन्तु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध

जिससे सब प्राणियों का अत्यन्त हित होता है, वही हमारे मत में सत्य है।

तुलसीदास लिखते हैं—

परहित सरिस धरम नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई॥

प्राणातिपात से बढ़कर कौन-सा पाप हो सकता है। यह तो किसी का सर्वस्वापहण है। यही एक ऐसा अपराध है जिसके लिए न्यायपुस्तक में प्राणदण्ड की व्यवस्था है। पशुवध के लिए भी वेदादि शास्त्रों में मृत्युदण्ड का विधान किया है। प्राणिवध को तो सदा, सर्वत्र अधर्म माना गया है, क्योंकि—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥ —मनु० ५।५०

प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस प्राप्त नहीं होता और जीवों की हत्या करना सुखदायक (स्वर्ग्यः) नहीं है, इसलिए मांसाहार नहीं करना चाहिए।

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
असमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ —मनु० ५।५१

जैसे मांस की उत्पत्ति होती है उसको और प्राणियों के बन्धन और हत्या को देखकर सब प्रकार के मांसभक्षण से दूर रहे।

मांसभक्षण के पाप की जघन्यता के कारण अकेले मांसाहारी ही नहीं अपितु उससे किसी भी रूप में सम्बन्धित आठ प्रकार के लोगों को हत्यारा और पापी घोषित किया गया है।

भैरव आदि के नाम पर मांसभक्षण—मध्यकाल में वाममार्ग से प्रभावित स्वार्थी लोगों ने अपनी उदरपूर्ति के लिए मांसभक्षण को वेद-विहित अथवा शास्त्रानुमोदित सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति में अनेकत्र स्वरचित श्लोकों का प्रक्षेप किया है और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की आड़ में देवी-देवताओं के नाम पर यज्ञों में पशुबलि का विधान किया है। तद्यथा—

करने ही में सदा रहते हैं। जब मांसाहारी किसी पुष्ट पशु को देखता है तभी उसकी इच्छा होती है कि इसमें मांस अधिक हैं, मारके खाऊँ तो अच्छा हो और जब मांस का न खानेवाला उसको देखता है तो प्रसन्न होता है कि यह पशु आनन्द में है। जैसे सिंह आदि मांसाहारी पशु किसी का उपकार तो नहीं करते, किन्तु अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का प्राण भी ले मांस खाकर अतिप्रसन्न होते हैं, वैसे मांसाहारी मनुष्य भी होते

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ —५।३९

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्च पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः॥ —५।४०

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥ —५।४१

उपर्युक्त श्लोक ४१ में 'अब्रवीत् मनुः' पदों से यह श्लोक तो स्पष्टतः मनु से भिन्न व्यक्ति द्वारा रचित है, अतः यह प्रक्षिप्त है।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥

—मनु० ५।४५

यहाँ बड़े बलपूर्वक मांसभक्षण का निषेध होने से पूर्वोक्त तीनों श्लोक स्पष्टतः प्रक्षिप्त हैं।

आर्यों ने अपनी सभ्यता में सबसे पहला स्थान दूध और फलों को दिया था—"**पयः पशूनां रसमोषधीनाम्**"। इसके बाद कृषि से उत्पन्न अन्नों का स्थान था। राम, लक्ष्मण और सीता फलाहार से ही तपस्वी जीवन निर्वाह करते रहे। गुहराज के आतिथ्य करने पर रामचन्द्र कहते हैं—

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्॥

—वा० रा० अयो० ५०।४४

अर्थात् मैं कुशचीर पहने हुए तापस वेष और मुनियों के धर्म में स्थित केवल फल-मूल खाकर ही रहता हूँ। भरत ने भी कहा है—

चतुर्दशं हि वर्षाणि जटाचीरधरोम्यहम्।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन॥

—वा० रा० अयो० ११२।२४

अर्थात् मैं भी चौदह पर्ष तक जटा धारण करके फल-मूल खाकर ही रहूँगा।

वस्तुतः हमारे शरीर के बढ़ने और पुष्टि पाने के लिए प्रायः सेन्द्रिय

हैं। इसलिए मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं।

हिंसक—अच्छा जो यही बात है तो जब तक पशु काम में आवें तब तक उनका मांस न खाना चाहिए, जब बूढ़े हो जावें वा मर जावें तब खाने में कुछ भी दोष नहीं।

पदार्थों (Organic Matter) की ही आवश्यकता रहती है। यह फलों, सब्जियों और अनाजों में बहुतायत से विद्यमान रहता है।

मांसभक्षण से बड़ा कोई पाप नहीं। मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी विज्ञान के पण्डित थे। रोगी होने पर उनसे कहा गया कि थोड़े मांसाहार से आपको रोग से मुक्ति मिल सकती है, तो उन्होंने पूछा—क्या मैं फिर कभी नहीं मरूँगा? सकारात्मक उत्तर न मिलने पर उन्होंने कहा—यदि मरना निश्चित है तो कुछ दिन जीने के निए किसी और के प्राण क्यों लूँ?

FOOD VALUE CHRAT

पौष्टिक तत्त्व तुलनात्मक चार्ट

भारत सरकार द्वारा प्रकाशित

नाम पदार्थ Name of Food Stuff	प्रोटीन Protein %	चिकनाई Fat %	खनिज लवण Mineral %	कार्बोहाइ-ड्रेट्स Carbo-hydrates %	कैल्शियम Calcium %	फास-फोरस Phos-phorus %	लोहा Iron	कैलोरी Calo-ries
शाकाहारी खाद्य Vegetarian Foods (प्रत्येक १०० ग्राम में)								
Green Gram मूँग	२४.०	१.३	३.६	५६.६	०.१४	०.२८	८.४	३४४
Black Gram उड़द	२४.०	१.४	३.४	६०.३	०.२०	०.३७	६.८	३५०
Red Gram अरहर	२२.९	१.७	३.६	५७.२	०.१४	०.२६	८.८	३३३
Lentil मसूर	२५.१	०.७	२.१	५६.७	०.१३	०.२५	२.०	३४६
Peas मटर	२२.९	१.४	२.३	६३.५	०.०३	०.३६	५.०	३५८
Bengal Gram चना	२२.५	५.२	२.२	५८.९	०.०७	०.३१	८.९	३७२
Cow Gram लोबिया	२४.६	०.७	३.२	५५.७	०.०७	०.४९	३.८	३२७
Soyabeans सोयाबीन	४३.२	१९.५	४.६	२०.९	०.२४	०.६९	११.५	४३२
Almond बादाम	२०.८	५८.९	२.९	१०.५	०.२३	०.४९	३.५	६५५
Cashewnut काजू	२१.२	४६.९	२.४	२२.३	०.०५	०.४५	५.४	५९६
Coconut नारियल	४.५	४१.६	१.०	१३.०	०.०१	०.२४	१.७	४४४
Gingelly तिल	१८.३	४३.३	५.२	२५.२	१.४४	०.५७	१०.५	५६४
Groundnut मूम्फली	३१.५	३९.८	२.३	१९.३	०.०५	०.३४	२.६	५४९
Pistochionut पिस्ता	१९.८	५३.५	२.८	१६.२	०.१४	०.४३	१३.७	६२६
Walnut अखरोट	१५.६	६४.५	१.८	११.०	०.१०	०.३८	४.८	६८७
Cumin जीरा	१८.७	१५.०	५.८	३६.६	१.०८	०.४९	३१.०	३५६
Kandanthippli पीपल	६.४	२.३	४.८	६५.८	१.२३	०.१९	६२.१	३१०
Fenugreek मेथी	२६.२	५.८	३.०	४४.१	०.१६	०.३७	१४.१	३३३
Cheese पनीर	२४.१	२५.१	४.२	६.३	०.७९	०.५२	२.१	३४८

Ghee घी	—	९८.०	—	—	—	—	—	९००
Skimmed milk Powder स्प्रेटा दूध पाउडर	३८.३	.०.१	६.८	५१.०	१.३७	१.००	१.०४	३५७

मांसाहारी खाद्य Flesh Foods (प्रत्येक १०० ग्राम में)

Egg अण्डा	१३.३	१३.३	.१९	—	०.०६	०.२२	२.१	१७३
Fish मछली	२२.६	०.६	०.८	—	०.०२	०.१९	०.९	९१
Mutton बकरी का मांस	१८.५	१३.३	१.३	—	०.१५	०.१५	२.५	१९४
Pork सूअर का मांस	१८.७	४.४	१.०	—	०.०३	०.२	२.३	११४
Beef गाय का मांस	२२.६	२.६	१.०	—	०.०१	०.१९	०.८	११४

अण्डों से हार्ट अटैक

Eggs Cause Mostly Fatal Heart Attacks

(The Hindustan Times, Dt. Oct. 19, 1985, Page-5, Column-4)

Prof. Michael Brown and Prof. Josef Goldstein of U.S.A. winners of Noble Prize for Medicine in 1985 recommend a diet free of eggs and saturated animal fats to avoid atherosclerosis which causes fatal heart attacks. They have found a direct relationship between fatty diet and atherosclerosis. Atherosclerosis is caused by accumultion of cholesterol on the walls of arteries supplying blood to heart muscles. Over the years the deposition narrows the channel until a clot suddenly forms, inhibiting blood supply starving the heart muscles of oxygen and causing a heart attack, mostly fatal. They say—Cholesterol—the fatty alcohol, is carried within certain particles circulating in the blood called low-density-lipoproteins (LDL).

अमेरिका में पिछले वर्ष १९८५ में, मैडिसन के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार के विजेता प्रो० माइकल ब्राउन और जोसफ गोल्डस्टीन ने अपने मेडिकल रासायनिक विश्लेषणों (Medical Chemical Analysis) **द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अण्डे-मांस आदि खाने से घातक हार्ट अटैक** (Fatal Heart Attack) **पैदा होता है। यह चिकना अल्कोहल होता है जो दिल को रक्त पहुँचानेवाली धमनियों** (Arteries) **में धीरे-धीरे जमा होकर उनको सुकेड़ देता है और एक दिन अचानक धमनियों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस तरह दिल को खून मिलना बन्द हो जाता है और वह व्यक्ति हार्टफेल से निश्चितरूप से तुरन्त मर ही जाता है। इस असाध्य रोग का अभी तक कोई इलाज़ नहीं निकला है।**

American Dr. Ketherine Nimmo, D.C.R.N., Oceano, California (U.S.A.) लिखते हैं—

रक्षक—जैसा दोष उपकार करनेवाले माता-पिता आदि को वृद्धावस्था में मारने और उनके मांस खाने में है, वैसा उन पशुओं की सेवा न कर मारके मांस खाने में है और जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी न बच सकेगा। इसलिए किसी अवस्था में मांस न खाना

An egg contains about 4 grains of cholesterol. When eggs are eaten the cholesterol content of the blood rises and the tendeny towards the development of gall stones, heart troubles, brain and kidney diseases increases.

वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि एक अण्डे में लगभग ४ ग्रेन कोलेस्टोरोल नामक भयानक तत्त्व पाया गया है। कोलेस्टोरोल की इतनी अधिक मात्रा के कारण अण्डे दिल की बीमारी, हाई ब्लडप्रैशर, धमनियों में जख्म, गुरदों की बीमारी, पित्त की थैली में पथरी आदि रोग पैदा करते हैं।

बेकार पशु

जिस जननी का दूध हम एक या दो वर्ष तक पीते हैं, उसे माँ कहकर जीवनभर श्रद्धा से पालते हैं, पर जिसका दूध मृत्युपर्यन्त पीते हैं उसे माँ कहने में लज्जा आती है। जब तक वह जवान रहती है और भरपूर दूध, घी, दही, छाछ, खोया, पनीर, रसमलाई, श्रीखण्ड, आइसक्रीम, मिल्कशेक, बर्फी, पेड़े खिलाती रहती है तब तक तो हम उसकी सेवा करते हैं, परन्तु बुढ़ापे में असमर्थ होते ही हम उसे धक्के मारकर घर से बाहर निकाल देते हैं। कुछ दिन तो बेचारी गलियों में कूड़े-कचरे में मुँह मारकर पेट भरती है और फिर एक दिन उसे बूचड़खाने पहुँचा दिया जाता है, क्या यही मानव-धर्म है? यदि रिटायर होने पर हमारे बुढ़ापे में हमें बेकार का बोझ समझकर हमारी सन्तान हमें घर से बाहर निकालकर किसी ट्रक के नीचे आकर मर जाने के लिए छोड़ दे तो हमपर क्या बीतेगी? जैसा सुख-दु:ख अपने को होता है, वैसा ही दूसरों को भी होता है। ऐसा मानकर मनुष्य को चाहिए कि **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'**।

ग्रन्थकार ने गाय आदि को 'माता-पिता के समान' माननीय कहा है। माता-पिता की उपेक्षा करनेवालों से उनकी सन्तान जब वैसा ही व्यवहार करती है तो मानो उनके अपराध का दण्ड दे रही होती है। कृतघ्नता ऐसा जघन्य अपराध या पाप है कि किसी भी प्रकार उसका प्रायश्चित्त सम्भव नहीं है—**'कृतघ्नस्य नास्ति निष्कृतिः'**। भाई गुरदास नाम के पञ्जाबी भाषा के एक अच्छे लेखक हुए हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

एक भंगन [सफाई-कर्मचारी] अपने हाथ में कपड़े से ढककर

चाहिए।

हिंसक—जिन पशुओं और पक्षियों अर्थात् जङ्गल में रहनेवालों से उपकार किसी का नहीं होता और हानि है, उनका मांस खाना वा नहीं?

रक्षक—न खाना चाहिए, क्योंकि वे भी उपकार में आ सकते हैं।

कोई वस्तु लिए श्मशान की ओर जा रही थी। देखने पर पता चला कि उसके हाथ में एक खोपड़ी थी जिसमें शराब में पकाया गया कुत्ते का मांस था। जब उससे पूछा गया कि ऐसी घृणित वस्तु को तू कपड़े से ढककर-ले जा रही है तो उसने उत्तर दिया—''इसलिए कि कहीं इसे किसी कृतघ्न की नज़र न लग जाए।''

रामायण में आदिकवि ने लिखा है—

कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥

—कि० काण्ड ३०।७३

अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर अपने सहायक के कार्य की सिद्धि में जो सहायता नहीं करते, ऐसे कृतघ्न पुरुष का मांस मांसाहारी पशु भी नहीं खाते।

शैक्सपीयर ने 'कृतघ्नता' की उपमा 'निर्दय पिशाच एवं विकराल दानव' से दी है। अपने प्रसिद्ध नाकट King Lear में उसने लिखा है—

Ingratitude, thou marble-hearted friend,
More hideous, than the sea-monster. (Act I Sc. 4)

इसी सन्दर्भ में उसने आगे लिखा है—

How sharper than a serpent's tooth it is to have a thankless child. Filial ingratitude, is it not like the mouth cutting the hand for lifting food to it.

इसलिए जिस प्रकार हम अपने पालन-पोषण करनेवाले माता-पिता के बुढ़ापे में अनुपयोगी होने पर भी उनकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार जिस गोमाता ने जीवनभर घी-दूध से हमारा पालन-पोषण किया और जिसके पुत्र बैल ने हमारे लिए हज़ार मन अन्न उपजाया, वृद्ध होने पर उन्हें भूखों मरने के लिए छोड़ देना या क़साइयों को सौंप देना कहाँ का न्याय है? यह कृतघ्नता और नैतिक पतन की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है? ऐसे पशुओं की प्राणरक्षा के लिए गोशालाओं, गोसदनों तथा पिंजरापोलों की स्थापना करना हमारा परम धर्म है। ऋषि दयानन्द ने कहा ही नहीं, रिवाड़ी में देश की सबसे पहली गोशाला की स्थापना करके अपने कथन को व्यावहारिक रूप देकर हमारा मार्ग प्रशस्त किया। जब तक अपङ्ग तथा वृद्ध गायों के रखने की सन्तोषजनक व्यवस्था नहीं होगी, तब तक सम्पूर्ण गोवध बन्दी का कानून बन जाने पर भी

देखो, १०० भङ्गी [सफ़ाई कर्मचारी] जितनी शुद्धि करते हैं, उनसे अधिक एक सुअर वा मुर्गा अथवा मोर आदि पक्षी सर्प आदि की निवृत्ति करने से पवित्रता और अनेक उपकार करते हैं और जैसे मनुष्यों का खान-पान दूसरे के खाने-पीने से उनका जितना अनुपकार होता है, वैसे जङ्गली मांसाहारी का अन्न जङ्गली पशु और पक्षी हैं और जो विद्या वा विचार से सिंह आदि वनस्थ पशु और पक्षियों से उपकार लेवें तो अनेक प्रकार का लाभ उनसे भी हो सकता है। इस कारण मांसाहार का सर्वथा

बूढ़ी, अपङ्ग गायों तथा बैलों के निराश्रय होकर मरते रहने की आशङ्का बनी रहेगी।

बेकार पशु भी बेकार नहीं

आर्थिक दृष्टि से बेकार कहे जानेवाले पशु भी यथार्थ में बेकार नहीं है। भारत सरकार की पत्रिका वेटर्नरी साइन्स एण्ड एनीमल हसबैंडरी के मार्च १९४१ के अंक में प्रकाशित एक लेख में बताया गया था कि औसत गाय को जीवित रखने के लिए वर्ष में ३६ मन सूखा चारा चाहिए जिसका मूल्य १०८ रुपये वार्षिक बनता है। (१९४१ के ये तथा प्रस्तुत विवरण में दिये सब आँकड़ों का वर्तमान में सर्वत्र व्याप्त बढ़े हुए मूल्यों के अनुसार बढ़ाकर वर्तमान आँकड़ों का अनुमान लगाया जा सकता है)। इस हिसाब में वह चारा, जो पशु वर्षाऋतु में या अन्य दिनों में गोचर भूमियों में चरता है, वह कम नहीं किया गया है। सब खर्च लगा लेने पर अधिक-से-अधिक १०८ रुपये के चारे पर एक पशु जीवित रहता है। एक पशु से सामान्यतः १२५ रुपये वार्षिक आय होती है, जबकि गोसदन में रखने से १५ रुपये और घर में रखने से १०८ रुपये व्यय पड़ता है। इस हिसाब से गोसदन में रक्खा जानेवाला पशु ११० रुपये वार्षिक और घर में रक्खा जानेवाला पशु १७ रुपये वार्षिक लाभ देता है। यदि सरकार और जनता दोनों गोबर और गोमूत्र को ठीक-ठीक उपयोग में लाएँ और मरे हुए पशु के चमड़े और हड्डी का ठीक उपयोग हो तो एक वृद्ध, अपङ्ग अथवा अनुपयोगी कहलानेवाला पशु भी समाज पर बोझ नहीं रहता।

पंचवर्षीय योजना के १८वें अध्याय में 'कृषि की कुछ समस्याएँ' के २३वें पैराग्राफ में लिखा है कि १९५१ की पशुगणना के हिसाब से अनुमानतः २२ अरब ५० करोड़ मन गोबर वार्षिक होता है। इसमें आधा खाद के काम में और लगभग आधा ही जलाने के काम में आता है। ईंधन के काम आनेवाले गोबर का मूल्य खाद के काम आनेवाले गोबर के बराबर नहीं, पर एक चौथाई से कम नहीं है। इस हिसाब से खाद और जलानेवाले दोनों प्रकार के खाद का मूल्य १४ अरब रुपये से कम नहीं।

निषेध होना चाहिए।

भला! जिनके दूध आदि खाने-पीने में आते हैं, वे माता-पिता के समान माननीय क्यों न होने चाहिएँ? ईश्वर की सृष्टि से भी विदित होता है कि मनुष्यों से पशु और पक्षी आदि अधिक रहने से कल्याण है, क्योंकि

पंचवर्षीय योजना के विशेषज्ञ यह मानते हैं कि गोमूत्र का अनुमान इस गोबर में नहीं लगाया गया है। यहाँ प्रस्तुत विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बेकार कहे जानेवाले पशुओं से प्राप्त होनेवाली आय से उनपर खर्च होनेवाला व्यय बहुत कम है।

गोरक्षा से देश की खेती का अस्तित्व भी जुड़ा हुआ है। पशुओं की रक्षा में भारत के ग्रामों और उनमें बसनेवाले करोड़ों लोगों की रक्षा निहित है। खेती के काम में लगे हुए लोगों से बात करने पर गोबर की बहुत बड़ी उपयोगिता समझ में आने पर लोग निकम्मे लगनेवाले पशुओं को भी अपनाने लगे हैं, क्योंकि प्रत्यक्षत: सामान्य प्रतीत होनेवाला गोबर जमीन की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने में बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। ट्रैक्टरों तथा रासायनिक खादों का प्रयोग करनेवालों के अनुसार जमीन की फलद्रूपता बनाये रखने में गोबर का खाद अनुपम है, और यह खाद गाय, बैल, बछड़ों से ही प्राप्त होता है। इस दृष्टि से सूखी गाएँ और वृद्ध बैल भी खेती के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं। उसमें गोबर-मूत्र से सेन्द्रिय (Organic) खाद का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

ऐसे पशुओं को निभाने का खर्च किसानों के लिए अधिक नहीं है। किसान की जमीन के कुछ पड़ती हिस्से में खेत के चारों ओर बाढ़ में लगे घास-बेल-पत्री आदि चराकर और खिलाकर इन पशुओं को जिलाये रखते हैं। ज़रूरत है इन सारे पशुओं के शास्त्रीय संवर्धन की और उनके गोबर तथा मूत्र के सम्पूर्ण वैज्ञानिक उपयोग की। अच्छी नस्ल को कुशलता के साथ विकसित किया जाए तो दूध और ऊर्जा दोनों अधिक मात्रा में मिल सकते हैं और मुनाफ़े में खाद और ईंधन मुफ़्त में मिल सकते हैं।

गैस प्लांट

खेती से अतिरिक्त पैदा होनेवाले घास-पात को खाकर घर के पशु प्रतिदिन कम-से-कम १० किलो बढ़िया गोबर देते हैं। यह गोबर पेड़ों की भी रक्षा करता है और धरती को भी हृष्ट-पुष्ट करता है। गैस प्लांट में दस किलो गोबर से बारह घन फुट गैस मिल जाती है। अब जिस तरह के चूल्हों का विकास हुआ है उनसे एक आदमी का भोजन बनाने के लिए छह घन फुट गैस की आवश्यकता पड़ती है। अगर सब पशुओं का गोबर डाल दिया जाय तो लगभग ६० करोड़ लोगों की रसोई बनाने

ईश्वर ने मनुष्यों के खाने-पीने के पदार्थों से भी पशु-पक्षियों के खाने-पीने के पदार्थ घास, वृक्ष, फूल, फलादि अधिक रचे हैं और वे बिना जोते, बोये, सींचे, पृथिवी पर स्वयं उत्पन्न होते हैं और (ईश्वर) वहाँ वृष्टि भी करता है, इसलिए समझ लीजिए कि ईश्वर का अभिप्राय उनके

के लिए गैस मिल जाएगी। शहरों में जिस गैस का उपयोग होता है वह क्रूड ऑयल से बनती है। इस गैस का जो सिलेंडर कभी १२-१३ रुपये में मिलता था, अब ७५ रुपये में मिलता है। कुछ समय बाद ही वह सौ रुपये में मिलने लगेगा, क्योंकि एक ओर ऑयल के दाम बढ़ रहें हैं तो दूसरी ओर गैस की खपत बढ़ती जा रही है।

यदि पशु बने रहेंगे तो घास-पात खाकर गोबर देते रहेंगे। गैस प्लांट में गोबर पहुँचता रहेगा तो गैस मिलती रहेगी। जितनी गैस मिलेगी उतने पेड़ कम कटेंगे और पेड़ जितने कम कटेंगे उतना प्रदूषण कम होगा तथा लोग स्वस्थ रहेंगे। गाय दूध देती है, बैल खेती और ढुलाई का काम करते हैं, गाय, बैल, बछड़े यहाँ तक कि अन्यथा बेकार समझे जानेवाले पशु भी गोबर देते हैं। इस तरह गाय हमारी कामधेनु है। गैस प्लांट में पड़ा गोबर गैस देता है, बिजली देता है और सब देकर जो बचता है, वह खाद के रूप में खेतों में पहुँचकर उपज बढ़ाता है, जिस तरह गैस संयन्त्र में गोबर सड़ता है उसी तरह खाद के गड्ढों में पड़कर पत्तों आदि के साथ मिलकर गैस बनाता है। लेकिन क्योंकि खाद के गड्ढों में प्राणवायु की उपस्थिति में 'फरमेंटेशन' का काम होता है, इसलिए उसमें से कार्बन डाय आक्साईड निकलता है, पर गैस संयन्त्र में प्राणवायुरहित फ़रमेंटेशन होता है, इसलिए इस प्रक्रिया के चलते गोबर की रबड़ी बनती रहती है। इस रबड़ी में गड्ढेवाली खाद की तुलना में दुगनी नाईट्रोजन होती है। पैदावार बढाने के काम में नाईट्रोजन का विशेष महत्त्व होता है। लेकिन उससे भी अधिक महत्त्व की चीज तो 'ह्यूमस' है। ह्यूमस जमीन को जीवाणुओं से समृद्ध बनाता है। गैस संयन्त्र की रबड़ी में ह्यूमस की मात्रा बहुत अधिक होती है। इस कारण गड्ढेवाली खाद की तुलना में गैस संयन्त्र की खाद अधिक उपयोगी होती है।

इस समय (सन् १९८३) हमारे देश में भिन्न-भिन्न आयु के पाड़े, पाड़ियाँ, भैंसें आदि ६ करोड़, बछड़े-बछड़ियाँ, गाय-बैल आदि १८ करोड़ दूध उत्पादक, खेती और वहन करनेवाले पशु हैं। प्रत्येक पशु प्रतिदिन औसतन १० किलो गोबर देता है। इस गोबर का कुछ हिस्सा तो घूरे में डाल दिया जाता है जो बाद में खाद के रूप में परिवर्तित हो जाता है। तीसरे हिस्से के लगभग गोबर उपले (कण्डे) बनाकर चूल्हों में झोंक दिया जाता है। इस तरह जो कण्डे जलाये जाते हैं उनकी केवल १३ प्रतिशत गरमी ही काम आती है, शेष इधर-उधर फैल जाती है। यदि

मारने में नहीं, किन्तु रक्षा करने में है।

हिंसक—जो मनुष्य पशु को मारके मांस खावें उनको पाप होता

गैस प्लांट के द्वारा गरमी पैदा की जाए तो ६० प्रतिशत काम में आती है। इसी तरह घूरों में जो खाद तैयार होता है, उसमें नाइट्रोजन लगभग एक प्रतिशत होता है, जबकि गैस प्लांट से जो स्लरी बाहर निकलती है उसमें दो प्रतिशत नाइट्रोजन होता है।

चीन की तरह अगर हम सारा गोबर-मूत्र गैस प्लांट के काम में लें तो बड़ी मात्रा में सेन्द्रिय खाद और गैस प्राप्त करके देश की ये दो समस्याएँ हल कर सकते हैं। २४ करोड़ (१९८३) पशुओं का प्रतिदिन औसत १० किलो गोबर के हिसाब से हर रोज़ २५ लाख टन गोबर मिलेगा। एक क्यूबिक मीटर गैस के लिए २५ किलोग्राम गोबर लगता है। इस प्रकार हमें प्रतिदिन १० करोड़ क्यूबिक मीटर गैस चाहिए। इस हिसाब से २० करोड़ लोगों की रसोई के ईंधन की समस्या हल हो जाती है। जलावन की कमी और विदेशों से आयात होनेवाले केरोसिन आदि का बोझ इससे हल्का हो जाएगा।

वार्षिक ९० करोड़ टन गोबर से २ प्रतिशत के हिसाब से जमीन को पोषण देनेवाले नाइट्रोजन आदि तत्त्व मिल जाते हैं। पशुओं के आहार में सारे ही पोषक तत्त्व होते हैं। इस प्रकार उत्तम प्रकार का सेन्द्रिय खाद मिलने से जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी। अनाज में स्वाद, मिठास आदि बढ़ेगा और रासायनिक खाद से उत्पन्न होनेवाले अन्न से लगनेवाले रोगों से भी मुक्ति मिलेगी। इस खाद का मूल्य लगभग तीन हज़ार करोड़ रुपये होगा। उतना ही रासायनिक खाद उत्पन्न करने के लिए आज (१९८३) के हिसाब से २०० अरब रुपये की पूँजी लगानी पड़ेगी। सन् १९८१ में भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने नैरोबी की ऊर्जा परिषद् में बताया था कि भारत की पशुशक्ति देश की स्थापित विद्युत् शक्ति से भी अधिक ऊर्जा देश को देती है। हमारा पशुधन हमें ६० अरब का दूध, ५० अरब की भारवहन शक्ति, ३० अरब का सेन्द्रिय खाद और बीस अरब का गैस—कुल मिलाकर १६० अरब का आर्थिक लाभ देता है।

रासायनिक खाद

मनुष्य का स्वास्थ्य इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह क्या और कितना खाता है, अपितु इस बात पर निर्भर करता है कि वह कैसी चीज़ खाता है। धरती स्वस्थ होगी तो पौधा स्वस्थ होगा, पौधा स्वस्थ होगा तो अनाज स्वस्थ होगा और अनाज स्वस्थ होगा तो मनुष्य स्वस्थ होगा। जो पौधा बीमार जमीन में उगेगा वह बीमार होगा। उसे बीमारी से बचाने के लिए उसपर कीटनाशक दवाईयाँ छिड़की जाएँगी। उस पौधे

है और जो बिकता मांस मूल्य से ले वा भैरव, चामुण्डा, दुर्गा, जखैया, वाममार्ग अथवा यज्ञ आदि की रीति से चढ़ा समर्पण कर खावें तो उनको

पर जो दाने लगेंगे वे बीमार होंगे। फिर उन दानों या फलों आदि को खानेवाले लोग कैसे स्वस्थ रह सकते हैं। जमीन को स्वस्थ रखने के लिए गोबर का खाद ही उपयोगी है।

भारत में गोधन विपुल मात्रा में था और उसके गोबर का खाद प्रचुर मात्रा में भूमि को मिलता था जिससे उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती थी। आज भी भारतभूमि में जो उर्वरा शक्ति है उसका श्रेय यहाँ गोधन को ही है।

खेती की पैदावार बढ़ाने में आज हम पाश्चात्य देशों का अनुकरण कर रहे हैं। उसके परिणामस्वरूप जो हो रहा है उसे अपनी कृषिभूमि का वन्ध्याकरण ही कहा जा सकता है। कृषिभूमि की पैदावार बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग अन्ततः घातक सिद्ध होगा

यह सत्य है कि अमरीका आदि देशों ने रासायनिक खादों से बड़ी तेजी से अपनी उपज चौगुनी करने में सफलता प्राप्त की है, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि रासायनिक खादों के लगातार प्रयोग के कारण ही आज अमरीका की २८ करोड़ एकड़ भूमि नष्ट हो गई है और ७० करोड़ एकड़ नष्टप्राय है। प्रतिवर्ष ५० लाख एकड़ भूमि की उपजाऊ शक्ति नष्ट करने का हम पाप कर रहे हैं। यह जानकारी अमरीकी कृषि-विभाग की 'भूमि-संरक्षण संस्था' ने १९५२ में प्रसारित एक विज्ञप्ति में दी थी जिसका शीर्षक था "शेष भूमि की सुरक्षा"। इसके अतिरिक्त ७७ करोड़ एकड़ भूमि उस शराबी या अफ़ीमची की तरह हो गई है जिसे शराब मिल जाने पर थोड़ा काम कर देने की तरह खाद से उत्तेजित कर फ़सलें उगाई जा सकती हैं, पर यदि किसी कारण उसे खाद न मिले तो उस वर्ष भूमि एक भी दाना देने में असमर्थ होगी। अमरीका क्षेत्रफल में भारत से चार गुना है और जनसंख्या ४० प्रतिशत है। इस प्रकार अमरीका भारत से दस गुणा समृद्ध है। परिणामतः अमरीका का किसान जमीन बाँझ होने पर भूमि की विपुलता के कारण दूसरी नई जमीन जोत सकता है, पर भारत की भूमि बाँझ हुई तो यहाँ का किसान कहीं का नहीं रहेगा। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए शराब पीना आवश्यक नहीं है, घी-दूध से प्राप्त शक्ति स्थिर रहनेवाली होती है। जमीन के लिए रासायनिक खाद शराब है तो गोबर की खाद दूध-मलाई है। अब अमरीका, यूरोप आदि के लोगों की आँखें खुल रही हैं और वहाँ के वैज्ञानिक सेन्द्रिय खाद की (Organic Farming) खेती को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

यह जानकर आश्चर्य होता है कि जहाँ सेन्द्रिय खाद का प्रयोग होता है, वहाँ कीटनाशक दवाईयों की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उससे

पाप नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे विधि करके खाते हैं।

रक्षक—जो कोई मांस न खावे न उपदेश और न अनुमति आदि

पैदा होनेवाले पौधे इतने शक्तिशाली होते हैं कि उनपर कीटों का असर न के बराबर होता है।

देश के लिए यह सौभाग्य की बात है कि श्री नारायण देवराव पांढरी पाण्डे (नडेपकाका) ने अपने जीवन के बहुमूल्य २५ वर्ष लगाकर सेन्द्रिय (कम्पोष्ट) खाद बनाने की एक ऐसी विधि निकाली है जिसके द्वारा गाय के एक किलो खाद से ३० किलो सेन्द्रिय खाद की प्राप्ति होती है। इस विधि का परीक्षण जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय इन्दौर, खादी ग्राम, रूरल इंस्टीट्यूट मदुरे', इंडियन इंस्टीट्यूट आफ़ टेक्नोलॉजी दिल्ली आदि ने किया है। इन्दौर में स्थित कस्तूरबा ग्राम में खेती में किसी भी प्रकार का कीटनाशक रसायन या पदार्थ प्रयोग में नहीं लाया जाता, फिर भी वहाँ कृषि उत्पादन सन्तोषजनक है। यहाँ २४ नवम्बर १९९३ को कीटनाशक पदार्थ पर आयोजित कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश राजेन्द्र सच्चर ने बताया कि खेती में कीटनाशक पदार्थों का उपयोग तीसरी दुनिया के देशों में ही हो रहा है, जबकि विकासशील और उन्नत देशों में इन पदार्थों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण प्रतिबन्ध लगा हुआ है। भारतीय कृषि अनुसन्धान विभाग (I.A.R.I.) में कार्यरत प्रमुख वैज्ञानिकों द्वारा लिखी ('The Organics in soil Health and Group Production') में डॉ० ए० सी० गौड़ ता डॉ० के०वी० सदाशिवन ने सेन्द्रिय खाद के विषय में लिखा है—

"Compost initially is 40-60 percent as effective as chemical fertiliser but the yields equal and surpass within a period of 4-5 years. Organic manures also have many more advantages including increased beneficial biological activity. An important point brought up is that 19 million tonnes of organic nutrient material should provide total needs of country's agriculture upto 2000 A.D.

—Times of India, Bombay, December 5, 1993.

इन्हीं सब बातों पर विचार करके ऋषि ने गोवंश की रक्षा और उन्नति को ध्यान में रखते हुए गोकरुणानिधि में गोकृष्यादि रक्षिणी सभा की स्थापना पर इतना बल दिया है।

ट्रेक्टर

हमारी खेती में अनुमानत: ६५ प्रतिशत पशुशक्ति, २० प्रतिशत मनुष्यशक्ति और १५ प्रतिशत यन्त्रशक्ति काम करती है। यह पशुधन खेतों को जोतने का और खेती सम्बन्धित अन्य कार्यों जैसे रहट चलाना,

देवे तो पशु आदि कभी न मारे जावें, क्योंकि इस व्यवहार में बहकावट, लाभ और विक्री न हो, तो प्राणियों का मारना बन्द ही हो जावे। इसमें

गन्ने का रस निकालना, तेलघानी चलाना आदि अनेकविध कार्य करता है। यदि इस सारे पशुधन को नष्ट करके सारे कार्य ट्रेक्टरों से कराना चाहें तो प्रथम तो ये सभी कार्य ट्रेक्टरों से होना सम्भव ही नहीं, दूसरे भारत की ३५ करोड़ एकड़ जमीन के लिए ४० लाख ट्रेक्टर चाहिएँ। वर्तमान में यह कार्य मुख्यरूप से बैलों द्वारा प्रचालित ४ करोड़ हलों से होता है। अनुमानतः १५ प्रतिशत जमीन ट्रेक्टरों से जोती जाती है। सारी जमीन ट्रेक्टरों से जोतनी हो तो अतिरिक्त ५०० अरब रुपयों की पूँजी लगानी होगी।

यदि हम ऐसा करना चाहें तो सोचना होगा कि क्या हम इतनी पूँजी जुटा सकेंगे? इस कार्य के लिए अपेक्षित लोहे आदि की व्यवस्था कर सकेंगे? ट्रकों और ट्रेक्टरों आदि के लिए आवश्यक तेल का आयात कर सकेंगे? संसार की १५ प्रतिशत हमारी जनसंख्या और संसार के कुल खनिज तेल का आधा प्रतिशत से भी कम हमारे पास है। आज भी हमें प्रतिवर्ष ५० अरब रुपयों से अधिक खर्च खनिज तेल के आयात पर करना पड़ता है। क्या हम अपना घाटा अमर्यादित रूप में बढ़ाते रह सकते हैं?

यह सब असम्भव है, पर यदि यह सम्भव भी हो तो भी देश के आधे गावों तक पहुँचने के लिए सड़कें नहीं हैं और सभी गावों में खेतों तक पहुँचने के रास्ते नहीं हैं। फिर हमारे ७० प्रतिशत छोटे किसानों के पास दो हेक्टर जमीन भी नहीं है। वे इन ट्रेक्टरों से क्या काम लेंगे? उनके लिए तो पशुधन पर आधारित खेती अनिवार्य है।

ट्रेक्टर ज्यादा गहरी जोत करता है। इसलिए उस जमीन में ज्यादा पानी की ज़रूरत पड़ती है। हमारे देश में बारिश अनियमित है। कई प्रदेशों में तो केवल ३० प्रतिशत ही सिंचाई हो पाती है।

पशु का मल-मूत्र प्रदूषण पैदा नहीं करता, बल्कि कहीं-कहीं तो एंटीसेप्टिक का काम करता है। सुखाया हुआ गोबर और उसकी राख अनाज को कीड़ों से बचाते हैं। ट्रेक्टर गोबर-मूत्र तो देता नहीं जो खाद का काम दे, उल्टा प्रदूषण पैदा करता है। टूट-फूट जाने के बाद किसी काम का नहीं रहता। पशु तो मरने के बाद भी चमड़ा, चरबी, हड्डी, सींग आदि के रूप में कुछ-न-कुछ दे जाता है। ट्रेक्टर के रख-रखाव पर काफ़ी खर्च होता है। उसपर नई पूँजी भी लगाते रहना पड़ता है। पशुधन तो वंश-परम्परा से अपने-आप बढ़ता रहता है। ट्रेक्टर से ट्रेक्टर पैदा नहीं होता, पर पशु से पशु पैदा होता है। शुरू में दो-तीन साल तक उसके पालन-पोषण की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। लेकिन उस समय

प्रमाण भी है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः॥
—मनु० अ० ५ श्लो० ५१

भी पशु अपने मल-मूत्र से जमीन को पुष्ट करता हुआ लगभग ४० प्रतिशत उत्पादन-वृद्धि करनेवाला खाद देकर अपने पालन-पोषण का बदला चुका देता है।

अमरीका जैसे देशों के साथ यन्त्रीकरण के विषय में तुलना करते समय यह खयाल रखना चाहिए कि उसके पास पृथिवी का २ प्रतिशत क्षेत्रफल और ५ प्रतिशत जनसंख्या है, जबकि हमारे पास ढ़ाई प्रतिशत क्षेत्रफल और १६ प्रतिशत जनसंख्या है। वहाँ पर दो प्रतिशत लोग खेती करते हैं जबकि हमारे यहाँ ७० प्रतिशत लोग खेती पर निर्भर करते हैं। दुनियाभर के खनिज तेल का ३३ प्रतिशत प्रयोग करने का सामर्थ्य अमरीका के पास है, जबकि हमारी शक्ति उसका सौवाँ हिस्सा है। अपने देश की नीति निर्धारित करते समय हमें इन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए।

भारत के अर्थतन्त्र में पशुशक्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमारे लगभग चार करोड़ हलों और डेढ़ करोड़ बैलगाड़ियों की चालकशक्ति पशुशक्ति है। इस पशुधन की क्षमता बढ़ाना और उसका वैज्ञानिक संवर्धन करना भारत के कृषि-उत्पादन और यातायात की दृष्टि से बहुत आवश्यक है। आज पाँच लाख बैलगाड़ियाँ हैं। उनमें रबड़ के पहिए लग जाएँ तो यातायात में काफ़ी सुविधा हो सकती है।

भारत में तो गोपालन का महत्त्व आनादिकाल से चला आता है, परन्तु अब यान्त्रिकीकरण की दृष्टि से बहुत आगे बढ़े हुए अमरीका और जापान-जैसे देश भी इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। गुजरात के पूर्व राज्यपाल तथा गाँधी-दर्शन के अध्येता श्रीमन्नारायण ने जापान से लौटने के बाद अपने अनुभव का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा था—"भारत में गोसंवर्धन का महत्त्व स्वाभाविक ही है। यहाँ आर्थिक संयोजन की नींव खेती है और खेती की रीढ़ गाय-बैल हैं, पर मैंने जापान में देखा कि अब वहाँ का किसान भी छोटे-बड़े ट्रैक्टरों के बदले गाय-बैल का उपयोग करने लगा है। पूछे जाने पर एक किसान ने बताया कि अब तक तो हम यन्त्रों और कृत्रिम खाद का ही उपयोग करते थे, परन्तु अनुभव ने बताया कि इससे हमारी हज़ारों एकड़ ज़मीन बरबाद हो गई, अतः अब हम गाय-बैलों से खेती करने लगे हैं।

एक तरह से ये सर्वोत्तम ट्रैक्टर हैं, क्योंकि इसकी मरम्मत के लिए

अर्थ—अनुमति—मारने की सलाह देने, मांस के काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए लेने और बेचने, मांस के पकाने, परसने

मैकेनिकों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। इसके अलावा यह हमें आरोग्यप्रद दूध देती है और हमारी जमीन की फलद्रूपता बनाये रखने के लिए गोबर-मूत्र का सेन्द्रिय खाद भी मिल जाता है। अन्त में वह विनोदभरी आँखों से बोला—''साहब! ये मशीनें न दूध देती हैं न खाद के लिए गोबर।''

ऐसा ही अनुभव आधुनिक युग के विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन ने भारत की जनता के नाम भेजे गये सन्देश में लिखा था। उन्होंने कहा था कि भारत के लोग रासायनिक खाद और ट्रैक्टर की पद्धति को न अपनाएँ, क्योंकि इसके कारण अमरीका की जमीन की उर्वरा शक्ति चार सौ वर्ष में समाप्त होनेवाली है, जबकि भारत में गाय और बैल पर आधारित खेती दस हज़ार बरसों से होती आ रही है, किन्तु उसकी फलद्रूपता ज्यों-की-त्यों बनी है।

मुझे स्मरण है कि आइंस्टीन ने १९५१ के आसपास समाचार-पत्रों में प्रकाशित अपने एक व्यक्तव्य में कहा था कि जिस जमीन में ट्रैक्टर से खेती होगी, एक हज़ार वर्ष बाद उसमें घास का एक तिनका भी पैदा नहीं होगा।

क्रूरता व पीड़ा

कितनी नृशंसता और क्रूरता के साथ पशु हमारे देश में कटते हैं, उसका अन्दाज़ा तो सिर्फ दिल्ली में ईदगाह के निकट जाकर ही लगाया जा सकता है। कसाई और व्यापारी पशुओं को ट्रकों में भर-भरकर या डण्डों से पीट-पीटकर चलाते हुए अधमरी स्थिति में लाते हैं। वहाँ वे अपनी बारी की इन्तजार में भूखे-प्यासे पड़े रहते हैं और फिर उन्हें इस तरह तड़पा-तड़पाकर मारते हैं कि कुम्भीपाक नरक का वर्णन फीका पड़ जाता है। बूचड़खाने की निर्धारित क्षमता से कई गुना अधिक पशु यहाँ कटते हैं जिनमें अधिसंख्य रोगग्रस्त होते हैं। यही मांस पाँच सितारा होटलों में परोसा जाता है।

मौत के डर से या गुस्से के कारण पशु के मांस में एक विशेष प्रकार का तेज़ाब पैदा हो जाता है। इस कारण वह मांस विषाक्त हो जाता है।

बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि नगरों में आधुनिक ढंग के बड़े-बड़े बूचड़खाने खुले हुए हैं जहाँ प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में पशु मारे जाते हैं। इन बूचड़खानों की ओर जानेवाली सड़कों पर थके-माँदे, भूखे-प्यासे, लाठियों की मार से घायल गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं के झुण्ड-के-झुण्ड सहज ही देखे जा सकते हैं। ये दीन-हीन मूक प्राणी हमारी भाषा में बोल तो नहीं सकते, परन्तु इनकी गीली आँखों में

और खानेवाले आठ मनुष्य घातक=हिंसक अर्थात् ये सब पापकारी हैं।
और भैरव आदि के निमित्त से भी मांस खाना, मारना वा मरवाना

झाँककर देखा ज़ाए तो ऐसा प्रतीत होगा जैसे वे अपनी असह्य व्यथा को कह रहे हैं—"हे जानेवालो! दया करके हमें बचा लो। हमारी ऐसी दयनीय दशा को प्रत्यक्ष देखते हुए भी हमें इन कसाइयों के हाथों से छुड़ाने के लिए आगे क्यों नहीं आते? हमारा तो सर्वस्व तुम्हारे लिए है। जीते जी घास-फूँस खाकर तुम्हें अमृतरूप घी, दूध, मक्खन, मलाई देते रहे। तपती धूप में हल चलाकर तुम्हारे लिए अन्न उपजाकर तुम्हें भेंटकर भूसे से अपना गुजारा करते रहे। इसी सबसे तुम्हारा शरीर बना और बल, बुद्धि, पराक्रम की प्राप्ति हुई। मरने के बाद अपना हाड़, मांस, चाम तुम्हीं को सौंप जाएँगे, जैसे चाहो उसका उपयोग करना, किन्तु अन्त समय में हमें अपनी मौत मरने दो। ये कसाई तो बड़ी निर्दयता से तड़पा-तड़पाकर मारेंगे।

"ये राक्षस सैकड़ों मील दूर से जंगली मार्गों से लुकते-छिपते, लाठियों से प्रहार करते हमें धकेलते चलते हैं। बूचड़खाने तक पहुँचते-पहुँचते तो हम हड्डियों का पंजरमात्र रह जाते हैं। वहाँ हमारे सूखे चमड़े को नरम तथा मोटा बनाने के लिए अपनी वैज्ञानिक बुद्धि का प्रयोग करते हैं। चारों पैरों में रस्सी बाँधकर उल्टा लटका देते हैं और फिर हमारे शरीर पर खौलता पानी छिड़कते हैं। रास्ते में डण्डों की मार से हुए घावों पर गरम पानी पड़ने से असह्य पीड़ा होती है। एक भयङ्कर चीत्कार निकलने को होती है, परन्तु मुँह पहले से ही बाँध दिये जाने के कारण हम भीतर-ही-भीतर घुटकर रह जाते हैं। गरम पानी के प्रभाव से सूखे मांस और चाम में बचा-खुचा खून दौरा करने लगता है और सफ़ेद-पीला चमड़ा लाली पकड़ने लगता है। अब चमड़े को मोटा और नरम करने के लिए मोटे-मोटे डण्डों से हम उल्टे लटके हुओं की जोर-जोर से पिटाई की जाती है। फिर हमें बिजली के झटके (Electric shocks) दिये जाते हैं और फिर छुरियों से खाल खींच ली जाती है। तुम्हें बचपन से—कभी दूध से तो कभी अन्न से—माँ-बाप की भाँति पाल-पोसकर बड़ा किया। इस उपकार का बदला तुम इस तरह चुका रहे हो? मनुष्य-योनि श्रेष्ठतम मानी जाती है। यदि इसी का नाम मानवता है तो पाशविकता किसे कहोगे?"

Why kill for food? के लेखक Geoffrey L. Rudd ने विश्व के महान् साहित्यकार सन्त टालसटाय के बूचड़खाने सम्बन्धी एक संस्मरण को उद्धृत करते हुए लिखा है—

"It was the Friday before Trinity—a warm day in June. The smell of glue and blood was even stronger and

महापापकर्म है। इसलिए दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी।

---

more penetrating than my first visit. The work was at its height. The dusty yard was full of cattle and animals had been driven into all the enclosures beside the chambers. In the street, before the entrance, stood carts to which oxen, calves and cows were tied. Other carts drawn by good horses and filled with live calves, whose heads hung down and swayed about, drew up and unloaded.

Through the door opposite the one at which I was standing, a big, red, well-fed ox was led in. Two men were dragging it, and hardly had it entered when I saw a butcher raise a knife before its neck and stale it. The ox, as if all four legs had suddenly given way, fell heavily on its belly immediately turned over on one side, and began to work its legs and all its hindquarters. Another butcher at once threw himself upon the ox from the side opposite the twitching legs, caught its horns and twisted its head down to the ground, while another butcher cut its throat with a knife. All the time this was going on the ox kept incessantly twitching its head as if trying to get up and waved its four legs in the air. When the blood ceased to flow the butcher raised its head and began to skin it. The ox continued to writhe."

और यहाँ हम ९ अक्तूबर १९९३ के ट्रिब्यून के 'Saturday Plus' के अन्तर्गत गाय के सम्बन्ध में 'Milked and killed' शीर्षक से भारत की पूर्व पर्यावरण मन्त्री श्रीमती मेनका गाँधी द्वारा प्रस्तुत विवरण उद्धृत कर रहे हैं—

"If you have been reading this column since its inception, you will remember an article on the brutality of milk production.

"Milk production is very closely allied to the meat trade. No cow lives out its normal lifespan. She is milked, made sick and then killed. What happens to the child, the calf? All calves are separated from their mothers after three days. If the calf is a healthy female, it is put on milk substitutes to become a dairy replacement in two years. The male calves are tied and left to starve to death, which usually takes a week of intense suffering.

"Some are stuffed into trucks one on top of the other and sent to the slaughter house (illegally) to be killed for the veal that you eat in hotels (which is also illegal). Some are sold to the cheese industry to have their stomachs slit

(while alive) for rennet, the acid that is extracted for cheese making. A few are selected as bulls and kept in solitary pens for the rest of their lives for artificial insemination. Sometimes, when they are old, they are left on the streets of a city, to wander around till they are hit by a truck."

If you had any doubt or felt that my account was in any way ex-aggerated, let me quote from the Times of India, June 3, 1993 where my description has been corroborated by no less than the doyen of the milk industry—Dr. V. Kurien, Chairman of the National Dairy Development Board. I want the people of Bombay, specially vegetarians, to read this carefully—to see what their morning milk, their dahi, cheese and butter does to animals—and to their own health. "Around 80,000 calves are forcibly starved to death in tabelas in Bombay city every year. Not only the tabela owners in the city deprive the rural farmer of his best markets, they are guilty of killing 80,000 of the country's finest calves each year. The calves are the result of pains-taking research in genetics and animal husbandry. Starving them to death means the gene pool is being systematically drained" said Dr. Kurien.

Dr. Kurien explained that every year Bombay's tabela owners journeyed to cattle markets in Gujarat and Haryana where they purchased the finest buffaloes in the land. These cattle were then marched into the city on the hoof (which means they walked hundreds of miles) where they were kept for an eight month lactation period. Because they cannot produce milk otherwise, the buffaloes are pur-chased with their suckling calves. After a few weeks in Bombay the calves are taken away and STARVED TO DEATH. "There is a desperate scarcity of space in the city. It is simply uneconomical to raise calves so the tabela owners resort to the unbelievably cruel practice of starving them to death" says Dr. Kurien.

After the animals lactation period is over, it is marched back to the mofussil (again hundreds of miles) "for sal-vage" (to be impregnated again). They are then brought back to Bombay for another season along with the calf. The season resumes after the calf is killed.

"Each buffalo can only go through about five lacta-tions under these cramped conditions. So every year, at least 40,000 grown buffaloes are slaughtered in the city as well," says Dr. Kurien. The NDDB has recently conducted monitoring milk production in Bombay's tabelas. During the survey Dr. M.P.G. Kurup, the NDDB executive direc-

tor and supervisor of the plan said that a synthetic hormone prolactin was found in the milk samples. "Prolactic is used to stimulate the milk production cycle in cattle," said Dr. Kurup.

In humans, however, it causes spasms and muscle contractions. Dr. Kurup said that 600 calves had been 'saved' by the NDDB (out of a yearly 80,000) and had been sent to a breeding centre in Andhra Pradesh. The survey found that more than half the rescued cattle suffered from tuberculosis or brucellosis. "Humans run the risk of catching Andulan disease which results in the swelling of joints, reduced fertility and even sterility," said Dr. Kurup.

So, now the mothers of Bombay can no longer hide behind supposed ignorance. They know that the milk they feed to their children, not only has blood in it, it has banned chemicals which, according to the dairy investigators themselves can cause a number of life threatening diseases.

Happy drinking, Bombay wallahs and while you are at it you may as well eat the cow or buffalo since your milk has caused its death. —Sanctuary Features.

देवनार का बूचड़खाना

इस समय देश में तीन हज़ार के लगभग बूचड़खाने हैं। इनमें लुके-छिपे या कुटीर उद्योग की तरह चल रहे बूचड़खाने शामिल नहीं हैं। कलकत्ता में एक सर्वे के अनुसार प्रतिवर्ष अनुमानतः ५० लाख गाय-बैल कटते हैं।

देवनार—बम्बई में चेम्बूर से ४ किलोमीटर दूर देवनार का बूचड़खाना है। तीन सौ एकड़ जमीन के घेरे में फैला हुआ यह एशिया का सबसे बड़ा और दुनिया का नम्बर दो बूचड़खाना है। इस बूचड़खाने के सहारे अपना निर्वाह करनेवाले लोग इसी के चारों ओर बस गये हैं।

इससे पहले बम्बई का मुख्य बूचड़खाना बान्द्रा में था। जब वहाँ जगह कम पड़ने लगी और बदबू और गन्दगी के कारण उसके विरुद्ध आवाज़ उठने लगी तो उसे देवनार की खुली और विशाल जगह में स्थानान्तरित कर दिया गया। कुछ समय बाद वहाँ भी विरोध के स्वर गूँजने लगे तो विधान सभा में महाराष्ट्र सरकार की ओर से यह आश्वासन दिलाया गया कि इस बूचड़खाने में बम्बई शहर की जरूरत के हिसाब से ही पशु काटे जाएँगे। प्रारम्भ में काम के छह दिन के सप्ताह में १२५५ बैल, भैंस, पाड़े आदि काटने की अनुमति दी गई थी। १९७५ में ४२०० का कोटा कर दिया गया। पशु के काटे जाने से पूर्व वेटरनरी डाक्टर का सर्टिफिकेट लेना जरूरी है। उसे प्राप्त करना तनिक भी कठिन नहीं है। ये डाक्टर भय और प्रलोभन के बीच कार्य करते हैं। यहाँ प्रतिदिन ३००

से ४०० बैल, ५० से ६० भैंस और लगभग ८००० भेड़-बकरों का क़त्ल होने लगा। कुछ दिन बाद अरब देशों द्वारा क्रूड आयल आदि के भावों में बेहिसाब बढ़ोतरी के कारण उनके पास धन के ढेर लग गये।

परिणामतः वहाँ के लोगों में खाने-पीने और भोग-विलास की चीजों की माँग बढ़ गई। हमारा देश अरब देशों से हर साल पाँच हज़ार करोड़ रुपये का क्रूड आयल मँगाता है। उसके बदले दूसरी चीजों के साथ हम भारी मात्रा में मांस भेजते हैं। देवनार में ही जहाँ १९७३-७४ में ६६७८९ बैल काटे गये वहाँ १९८०-८१ में १,२१,६५६ बैल काटे गये। इस प्रकार सात वर्ष में दुगनी संख्या हो गई। देवनार में आज प्रतिवर्ष डेढ़ लाख से अधिक गाय-बैल, ३० हज़ार भैंसे और ४० लाख भेड़-बकरे कट रहे हैं।

बढ़ता हुआ निर्यात—विदेशों में बढ़ती हुई माँग के कारण विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लोभ में जहाँ १९७३-७४ में २००० टन मांस का निर्यात हुआ था, वहाँ १९७९-८० में बढ़कर ४०,००० टन और १९८३-८४ में एक लाख टन हो गया। वृद्ध पशुओं की तुलना में छोटी आयु के पशुओं का मांस अधिक स्वादिष्ट होता है। इसी तरह स्वतः मरे पड़े पशुओं के चमड़े की तुलना में क़त्ल किये गये पशु का चमड़ा अधिक आकर्षक होता है। इसलिए कानून के किसी भी छिद्र का लाभ उठाकर, अथवा कुछ ले-देकर छोटी आयु के पशु क़त्ल किये जाते रहते हैं। १९६५-६६ में चमड़े का निर्यत २८ करोड़ रुपये का था, वह बढ़ते-बढ़ते १९७९-८० में ४२५ करोड़ का हो गया। अंग्रेजी राज्य की तुलना में अब कहीं अधिक गोवध हो रहा है। तब गोवध प्रायः बूचड़खानों में होता था, उसकी गणना हो सकती थी, परन्तु आज तो घरों में, जंगलों में और खेतों में सब कहीं होता रहता है। इसलिए खालों के निर्यात के आधार पर ही अनुमान लगाया जा सकता है।

केरल और बंगाल को छोड़कर शेष सभी राज्यों में गाय की हत्या कानूनन बन्द है, किन्तु वहाँ कुछ शर्तों पर बैल, साँड और बछड़े-बछड़ी कटते रहते हैं और चोरी से गाएँ भी काफी संख्या में कटती रहती हैं।

इसलिए ऋषि दयानन्द ने प्रत्येक अवस्था में प्राणिमात्र की हत्या का निषेध किया है और इसे दण्डनीय अपराध बताया है।

भारत में महाभारतकाल में १६ करोड़ जनसंख्या थी और ९६ करोड़ गौएँ थीं। गुप्तकाल में गायों की संख्या ३५ करोड़ रह गई। अकबर के समय में २५ करोड़ और अंग्रेज़ों के समय १४ करोड़ रह गई और वर्तमान में ५ करोड़ रह गई। जैसे-जैसे मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे गोवंश की संख्या घटती जाती है। परिणामतः देश में दुःख बढ़ता जाता है, सुख घटता जाता है। इसलिए तत्कालीन शासन व्यवस्था

मद्य भी मांस खाने का ही कारण है, इसीलिए यहाँ संक्षेप से लिखते हैं—

प्रमत्त—कहोजी! मांस तो छूटा, परन्तु मद्य पीने में तो कोई भी दोष नहीं?

को चेतावनी देते हुए दयानन्द ने लिखा—"गौ आदि के नाश से राजा और प्रजा दोनों का नाश होता है, क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं तो दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की भी घटती होती है।"

'हिन्दुस्तान टाईम्स' के २८ जुलाई १९८० के अंक के अनुसार—

'The number of cows and buffaloes both in the rural and urban areas of the country have considerably dwindled between 1972 and 1976, according to the 37th round of National Sample Survey (N.S.S.).

According to the 1972 live stock census there were 53.181 million adult cows and 45.487 million milch cows in rural. In 1976 according to N.S.S. the adult cows to 42.647 million (decrease of 25.77 percent). The number of cows in rural India also decreased by 18.41 percent. In the urban areas of India the number of milch cows decreased from 2.4 million to 1.64 million i.e. a drop of 19.61 percent.

In the case of buffaloes the number of adult animals decreased by 4.73 percent and the milch animals by 14.40 percent. The urban concentration of buffaloes also dwindled by 8.73 percent in the case of adult animals, and by 14.50 percent in the case of milch animals. According to N.S.S. figures, the number of cows in every state had decreased between 1972 and 1976."

तब और अब

सन् १९३५ में गोवंश से प्राप्त होनेवाली हड्डियों में ८० प्रतिशत स्वाभाविक कारणों से मरनेवाली गौओं से प्राप्त होती थी, परन्तु अब ८० प्रतिशत क़त्ल की गई गौओं से प्राप्त होती हैं और केवल २० प्रतिशत स्वयं मरनेवाली गौओं से प्राप्त होती हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार अब प्रतिवर्ष २ करोड़ १७ लाख बैल-बछड़े मरते हैं। इसमें क़त्ल किये जानेवालों की संख्या एक करोड़ आठ लाख और स्वतः मरनेवालों की संख्या एक करोड़ नौ लाख है। इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योदय होते ही तीस हज़ार गाय, बैल, बछड़े मौत का शिकार हो जाते हैं।

मद्य पीने में दोष

जिस प्रकार अन्तड़ियों में अन्न जम जाता है, उसी तरह शराब का मुख्य अंश अल्कोहल शरीर में जाकर घुल-मिल जाता है और जब यह पच नहीं पाता तो बड़ी तेज़ी से अन्तड़ियों में फैलने लगता है। शराब

शान्त—मद्य पीने में भी वैसे ही दोष हैं जैसेकि मांस खाने में। मनुष्य मद्य पीने से नशे के कारण नष्टबुद्धि होकर अकर्तव्य कर लेता और कर्तव्य को छोड़ देता है, न्याय का अन्याय और अन्याय का न्याय आदि विपरीत कर्म करता है और मद्य की उत्पत्ति विकृत पदार्थों से होती है और वह मांसाहारी अवश्य हो जाता है, इसलिए इसके पीने से आत्मा में विकार उत्पन्न होते हैं और जो मद्य पीता है; वह विद्यादि शुभ-गुणों से रहित होकर उन दोषों में फँसकर अपने धर्म, अर्थ, और मोक्ष फलों को छोड़ पशुवत् आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि कर्मों में प्रवृत्त होकर अपने मनुष्यजन्म को व्यर्थ कर देता है। इसलिए नशा अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन भी न करना चाहिए।

जैसा मद्य है वैसे भांग आदि पदार्थ भी मादक है, इसलिए इनका भी सेवन कभी न करे, क्योंकि ये भी बुद्धि का नाश करके प्रमाद,

---

के नशे में एक बार तो मनुष्य हवा में उड़ने लगता है। कुछ देर बाद उसके लिए माचिस की तीली जलाना मुश्किल हो जाता है। न वह चल सकता है और न स्थिर होकर खड़ा हो सकता है। नशे की दूसरी अवस्था में उसे कपड़े बदलने के लिए भी किसी की सहायता लेनी पड़ती है। नशे की तीसरी अवस्था में शराबी नशे की-सी हालत में रहने लगता है। उसकी साँस तेज़ हो जाती है और वह ठीक से बोलने में भी असमर्थ हो जाता है। जो आदमी उसकी मदद को पहुँचता है, उसी पर औंधा गिर पड़ता है। भीतर से शरीर खोखला हो जाता है और फिर अन्तिम स्थिति आती है जब शराबी का शरीर लुंज-पुंज हो जाता है और क्रमशः मौत के मुँह में चला जाता है। जिस प्रकार मांसाहारी एक दिन मांसाहारी का भोजन बन जाता है, उसी प्रकार एक दिन शराब पीनेवाले को शराब पी जाती है।

शराब के लगातार प्रयोग से आदमी के शरीर में अनेक रोग घर कर जाते हैं। आँखे जलने लगती हैं, भूख मन्द पड़ जाती है, मिचली आने लगती है और जिस्म में कँपकपी होने लगती है। फिर उस स्थिति से उबरने और तात्कालिक ताज़गी व फुर्ती पाने के लिए धीरे-धीरे शराब की मात्रा बढ़ाने लगता है। शराब के निरन्तर प्रोयग से रक्त की नाड़ियाँ फैलने लगती हैं और त्वचा लाल व काली पड़ जाती है। गुर्दों पर शराब का खास असर होता है।

शराब पीते ही आदमी को कुछ समय के लिए ऐसा लगता है कि वह सब चिन्ताओं से मुक्त हो गया है। इस ग़लतफ़हमी के कारण दिनभर काम करके थका हुआ आदमी राहत पाने या झंझटों से छुटकारा पाने के लिए शराब के लिए बेचैन हो उठता है, परन्तु उसका घूँट भरने से मिलनेवाली खुशी देर तक नहीं रह पाती। कुछ देर बाद कष्ट उसे दुगुनी

आलस्य और हिंसा आदि में मनुष्य को लगा देते हैं। इसलिए मद्यपान के समान इनका भी सर्वथा निषेध ही है।

इससे हे धार्मिक सज्जन लोगो! आप इन पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते? हाय! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय, बकरे आदि पशुओं को मारने के लिए ले-जाते हैं, तब वे अनाथ तुम-हमको देखके राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं कि देखो! हमको बिना अपराध बुरे हाल से मारते हैं और हम रक्षा करने तथा मारनेवालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिए उपस्थित रहना चाहते हैं और मारे जाना नहीं चाहते। देखो! हम पशुओं का सर्वस्व परोपकार के लिए है और हम इसीलिए पुकारते हैं कि हमको आप लोग बचावें, हम तुम्हारी भाषा में अपना दु:ख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते, नहीं तो क्या हममें से किसी

शक्ति से दबोच लेते हैं। किसी देश में जिगर-रोग का अनुपात वहाँ के लोगों के शराब पीने और न पीनेवालों की आदत पर निर्भर करता है। गुर्दे पर मद्यपान के दुष्प्रभाव के कारण मूत्र-सम्बन्धी रोग होते हैं जो कालान्तर में गठिया-जैसे रोगों का कारण बन जाते हैं। शराब पीनेवालों के नालिकातन्त्र में खराबी हो जाने से हृदय सम्बन्धी रोग हो जाने का ख़तरा हो जाता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। इस प्रकार शराब वह भयङ्कर विष है जो शरीर के महत्त्वपूर्ण अङ्गों को बेकार कर देता है।

शराब पीने से शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक पतन होकर समाज का सारा ढाँचा बिगड़ जाता है । पं० जवाहरलाल नेहरु द्वारा जस्टिस टेकचन्द की अध्यक्षता में नियुक्त कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार शराब के कारण बड़े-बड़े राष्ट्रों और जातियों का ऐश्वर्य मिट्टी में मिल जाता है। गुप्तचर अपने शत्रुदेश के उच्चपदस्थ अधिकारियों से शराब के नशे की अवस्था में महत्त्वपूर्ण रहस्य जान लेने में सफल हो जाते हैं।

शराब आत्मा की आवाज को कुण्ठित कर देती है। शराब के नशे में ग्रस्त होने पर व्यक्ति उस स्थिति की तुलना में जब वह नशे में नहीं होता, अधिक अपराध करता है। अमरीका में एकत्र आँकड़ों के अनुसार वहाँ जितने लोग बन्दी बनाये जाते हैं उनमें ४० प्रतिशत शराबी होते हैं। इसलिए अमरीकी जीवन में सबसे बड़ी समस्या मद्यपान है। बलात्कार, वेश्यावृत्ति, डकैती और हत्या आदि कुछ ऐसे अपराध हैं जिन्हें शराब से बढ़ावा मिलता है। जो माता-पिता शराब पीते हैं उनके बालकों के अपराधी बनने की अधिक सम्भावना रहती है। अमरीका की एक अदालत में प्रस्तुत दस हज़ार मामलों में ९३ प्रतिशत का कारण शराब को पाया गया। भारत में ट्रकों-बसों के कारण होनेवाली दुर्घटनाओं में

को कोई मारता तो हम भी आप लोगों के सदृश्य अपने मारनेवालों को न्याय-व्यवस्था से फाँसी पर न चढ़वा देते? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं, क्योंकि कोई भी हमको बचाने में उद्यत नहीं होता और जो कोई होता है तो उससे मांसाहारी द्वेष करते हैं। अस्तु, वे स्वार्थ के लिए द्वेष करो तो करो, क्योंकि '**स्वार्थी दोषं न पश्यति**' जो स्वार्थ साधने में तत्पर है, वह अपने दोषों पर ध्यान नहीं देता, किन्तु दूसरों को हानि हो तो हो मुझको सुख होना चाहिए, परन्तु जो उपकारी हैं वे इनके बचाने में अत्यन्त पुरुषार्थ करें, जैसाकि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज तक वेदोक्त रीति से प्रशंसनीय कर्म करते आये हैं, वैसे ही सब भूगोलस्थ सज्जन मनुष्यों को करना उचित है।

धन्य है आर्यावर्त देशवासी आर्य लोगों को कि जिन्होंने ईश्वर के सृष्टिक्रम के अनुसार परोपकार में ही अपना तन, मन, धन लगाया और लगाते हैं, इसीलिए आर्यावर्तीय राजा, महाराजा, प्रधान और धनाढ्य लोग आधी पृथिवी में जङ्गल रखते थे कि जिससे पशु और पक्षियों की रक्षा होकर ओषधियों के सार दूध आदि पवित्र पदार्थ उत्पन्न हों, जिनके

बड़ा कारण ड्राइवरों का शराब में धुत्त होना पाया गया है। युवकों और युवतियों के चारित्रिक पतन का आरम्भ मद्यपान से होता है और पहली बार के अपराध के बाद उनके पतन की गति तेज़ होती जाती है। विश्वभर का अनुभव यह बताता है कि अपराधों की योजनाएँ शराब की बोतल के गिर्द एकत्रित लोगों द्वारा बनाई जाती हैं।

शराब कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न पी जाए, वह मानसिक सन्तुलन को खराब कर देती है, क्योंकि यह दिमाग़ के स्नायु-केन्द्रों को शून्य कर देती है जिससे भले-बुरे के विवेक की शक्ति जाती रहती है। शराब की लानत युद्ध, महामारी तथा दुर्भिक्ष-इन तीनों विपदाओं से अधिक भयङ्कर है, क्योंकि इसकी तबाही का क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी नस्लों तक रहता है। शराब के आते ही परिवार का धन-वैभव और उसकी सुख-शान्ति सदा के लिए विदा हो जाते हैं। शराबी की पत्नी को तो असह्य कष्ट झेलने पड़ते हैं। अत्यधिक अपमानित और प्रताड़ित होनेवाली ऐसी स्त्रियों को तो अपने बच्चों का पेट पालने के लिए अनैतिक कार्यों तक में प्रवृत्त होना पड़ता है और कभी-कभी आत्महत्या तक को विवश होना पड़ता है। मार-पीट होने पर घर के बालक ही नहीं, पड़ौसी तक आतंकित हो उठते हैं।

सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास १०) में ऋषि लिखते हैं—''जो लोग मांस-भक्षण और मद्यपान करते हैं, उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिए उनका सङ्ग करने से आर्यों को बचना चाहिए।''

खाने-पीने से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम आदि सद्गुण बढ़ें और वृक्षों के अधिक होने से वर्षाजल और वायु में आर्द्रता और शुद्धि अधिक होती है। पशु और पक्षी आदि के अधिक होने से खात भी अधिक होता है, परन्तु इस समय के मनुष्यों का इससे विपरीत व्यवहार है कि जङ्गलों को काट और कटवा डालना, पशुओं को मार और मरवा खाना और विष्ठा आदि का खात खेतों में डाल अथवा डलवाकर रोगों की वृद्धि करके संसार का अहित करना, स्वप्रयोजन साधना और पर-प्रयोजन पर ध्यान न देना इत्यादि काम उलटे हैं।

'विषादप्यमृतं ग्राह्यम्' सत्पुरुषों का यही सिद्धान्त है कि विष से

जंगलों की रक्षा

जंगलों और वाटिकाओं से फलों, अन्नों और पशुओं के चरने के लिए चारे की प्राप्ति होती है। आर्यों का तपस्वी समाज (ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ व संन्यासी) का अधिकतर समय जंगलों में ही व्यतीत होता था और उसके पशु भी वहीं रहते थे। संसार में जितनी प्राणनाशक वायु उत्पन्न होती है उसे वृक्ष ही खाते हैं और उसके बदले में प्राणप्रद वायु प्रदान करते हैं। इसी से वायु की अशुद्धि या प्रदूषण से उत्पन्न रोग जंगल में नहीं होते। वर्षा का सीधा सम्बन्ध जंगलों से है। 'Hormsworth History of the World' में लिखा है कि वर्षा में न्यूनाधिक्य उत्पन्न करना मनुष्य के हाथ में है। अधिक वर्षा अभिप्रेत हो तो वृक्ष लगा दीजिए, यदि वर्षा में कमी चाहिए तो वृक्षों को काट दीजिए। जैसे-जैसे वृक्ष कटते जा रहे हैं वैसे-वैसे वर्षा कम होती जा रही है और संसार में आर्द्रता कम होती जा रही है। साधारणतया वृक्षों को काटना अच्छा नहीं समझा जाता। वृक्ष को काटना मनुष्य की हत्या के समान पाप माना गया है।

चारागाह के बिना पशु नहीं रह सकते। घास और वृक्षादि ही उनका पालन करते हैं। वेदों में पशुओं के चरने की भूमि को भिन्न-भिन्न अनेक नाम दिये गये हैं। जहाँ गाएँ चरती हैं उसे 'व्रज' कहते हैं। उत्तर प्रदेश में मथुरा के आस-पास का क्षेत्र व्रज कहाता है। वहाँ ८४ कोस तक गोचर भूमि थी। इसी प्रकार विशेष रूप से घोड़ों की चारागाह को 'अर्व' कहते थे। अरब के घोड़े (अरब घोड़े) प्रसिद्ध रहे हैं। भेड़ों के चरने का स्थान 'गान्धार' नाम से प्रसिद्ध था। वैदिक काल के बाद ये नाम बदल गये। मध्यकाल में इन्हें वनचर या पशुचर कहा जाने लगा। अंग्रेजी का पाश्चर (Pasture) पशुचर का ही अपभ्रंश है। शतपथब्राह्मण और बौद्ध साहित्य के आधार पर बौद्ध साहित्य के प्रसिद्ध अध्येता रोज़ डेविड (Rhys Davids) ने लिखा है—"Great importance was attached to the rights of pastures and foresty. Priests claimed

भी अमृत लेना। इसी प्रकार गाय आदि के विषवत्, महारोगकारी मांस को छोड़कर उनसे उत्पन्न हुए दूध आदि अमृत रोगनाशक हैं उनको लेना। अतएव इनकी रक्षा करके विषत्यागी और अमृतभोजी सबको होना

---

as one result of performing a particular sacrifice (yajna) to ensure that a wide tract of such land should be provided (Shata). And it is often made a special point, in describing the grant of a privelege to a priest, that it contains such common lands" (The story of Nations, Buddhist India by T.W. Rhys Davids). अर्थात् चारागाहों और जंगलों के अधिकारों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। पुरोहित सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि उन्हें दक्षिणा के रूप में ऐसी भूमि प्राप्त हो जिसमें एकाध चारागाह हों।

भारतवर्ष में पहले प्रचुर गोचर भूमि थी। अंग्रेजों के जमाने में इसमें कमी हो गई। इधर कारखानों और रेल के विस्तार से जंगल और चारे की ऊसर जमीन भी घिरने लगी। ग्रेट ब्रिटेन में कुल ७ करोड़ एकड़ भूमि है। उसमें से दो करोड़ ३० लाख एकड़ गोचर भूमि है।

जर्मनी में ६ करोड़ एकड़ जमीन में खेती होती है और २ करोड़ १४ लाख एकड़ गोचर भूमि है। न्यूजीलैंड में ६ करोड़ ७० लाख एकड़ जमीन में से २ करोड़ ७२ लाख एकड़ गोचर भूमि है। अमरीका में लगभग ६० करोड़ एकड़ गोचरभूमि है। वहाँ उसमें खास तौर पर बढ़िया घास-चारा उपजाया जाता है। इस सबके विपरीत हमारे यहाँ पशुओं को आवश्यकता से २२ प्रतिशत चारा और ७२ प्रतिशत दाना कम मिलता है। यहाँ करोड़ों एकड़ जमीन व्यर्थ पड़ी है। उसमें तरह-तरह की घास तथा चारा उपजाया जाए, चारे का ठीक उपयोग हो और बिनौले, ग्वार, खली आदि का उत्पादन बढ़ाकर उनका उपयोग केवल पशुओं के लिए किया जाए तभी स्थिति में सुधार हो सकता है।

सृष्टि रचना परोपकारार्थ—साधारण मनुष्य भी बिना प्रयोजन के किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता, अतः सर्वज्ञ, चेतन ब्रह्म द्वारा सृष्टिरचना का कोई प्रयोजन अवश्य होना चाहिए। प्रयोजन अपना और पराया दो प्रकार का होता है। जगत् की रचना में ईश्वर का अपना कोई स्वार्थ नहीं है, क्योंकि वह तो **'अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः'** (अथर्व १०-९-४४) पूर्ण, अकाम तथा आनन्दस्वरूप है। योगसूत्र (१-२५ व्यासभाष्य) के अनुसार **'तस्यात्मानुग्रहाभावे भूतानुग्रहः प्रयोजनम्'** ईश्वर का अपना स्वार्थ न होने से उसने सृष्टि की रचना दूसरों अर्थात् जीवों के लिए की है—**'संहतपरार्थत्वात्'** (सांख्य १।१०५)। बड़ा प्रसिद्ध श्लोक है—

चाहिए। सुनों बन्धुवर्गो! तुम्हारा तन, मन, धन गाय आदि की रक्षारूप परोपकार में न लगें तो किस काम का है? देखो, परमात्मा का स्वभाव

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

न गाय अपना दूध स्वयं पीती है और न उसके जाये बैल स्वयं अन्न खाते हैं। वे सब परिश्रम 'इदं मनुष्याय, इदं न मम' की भावना से मनुष्यमात्र के लिए करते हैं। इसलिए ऋषि ने मनुष्यों को उनकी रक्षा में प्रवृत्त करने के लिए लिखा है कि "तुम्हारा तन, मन, धन गाय आदि की रक्षारूप, कार्य में न लगे तो किस काम का?" परन्तु मनुष्य उनका रक्षण न करके भक्षण करता है—"किमाश्चर्यमतः परम्।"

संकरित गाय

गो-विकास के क्षेत्र में हमने पश्चिम का अन्धानुकरण आरम्भ कर दिया है। अधिकतम दूध देनेवाली गायों का विकास पश्चिम में हुआ, अतः हमने विदेशी गायों का आयात आरम्भ कर दिया। विदेशी साँड़ों के वीर्य से हमारे यहाँ की अच्छी-से-अच्छी नस्लों का गर्भाधान कर संकरित नस्लों का तेजी से विकास किया जा रहा है। गीता में लिखा है—"संकरो नरकायैव"—संकर सन्तान नरक=दुःखों का कारण होती है। संकरित गायों के बछड़े खेती व यातायात के काम में निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं, जबकि अपने देश में खेती और यातायात के लिए बैलों की उपयोगिता बहुत अधिक है, क्योंकि ट्रकों, ट्रैक्टरों और रेल का चलन होने पर भी हमारे देश में खेती और यातायात का ७० प्रतिशत कार्य आज भी गोजाये बैलों के द्वारा ही हो रहा है। अखिल भारतीय कृषि एवं गो विकास संघ ने इस समस्या पर विचार करने के लिए सन् १९७९ में डॉ० मङ्गलूरकर की अध्यक्षता में पशु-विशेषज्ञों की एक समिति बनाई थी। इस समिति ने देशभर में इस समस्या का सब पहलुओं से अध्ययन करके जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—संकरित गायों के बछड़े खेती करने, सामान ढोने या परिवहन के उपयोग में लाने की दृष्टि से निरर्थक हैं।

२—संकरित गायों के ७५ प्रतिशत से अधिक बछड़े कसाइयों के हाथ बेचे जाते हैं। इस प्रकार वे बूचड़खाने में जाकर गोमांस का उत्पादन करने में ही सहायक होते हैं।

३—मिलिटरी डेयरियों में भी जहाँ सभी संकरित गाएँ होती हैं, ऐसी गायों के बछड़ों को सालभर के अन्दर ही सौ-पचास रुपयों में बेच दिया जाता है और वे अपने काम के लिए देशी बैल खरीदते हैं।

४—जिन संकरित गायों में पचास प्रतिशत भी विदेशी नस्ल का

कि जिसने सब विश्व और सब पदार्थ परोपकार ही के लिए रच रक्खे हैं, वैसे तुम भी अपना तन, मन, धन परोपकार ही के अर्पण करो।

बड़े आश्चर्य की बात है कि पशुओं को पीड़ा न होने के लिए

अंश रहता है उनकी हर पन्द्रह दिन में पशु-चिकित्सकों द्वारा देख-भाल करनी पड़ती है। फलस्वरूप ये गाएँ बड़ी-बड़ी डेरियों तथा धनी-मानी लोगों के लिए ही उपयोगी हो सकती हैं।

५—संकरित गायों के खान-पान का स्तर इतना ऊँचा होता है कि उन्हें पालना साधारण किसानों के सामर्थ्य से बाहर है। यदि उनके लिए अपेक्षित चिकित्सा, हरा चारा, खली एवं दाने आदि की समुचित व्यवस्था न हो पाये तो उनका दूध एकदम घट जाता है और वे मरणासन्न हो जाती हैं।

६—संकरित गायों में विदेशी साँड़ों के वीर्य के साथ ऐसे अनेक रोग भी फैल रहे हैं जो अपने देश के लिए नये हैं। उनकी चिकित्सा भी आसान नहीं है।

७—संकरण अभियान के कारण अपने देश की अच्छी नस्लों की गाएँ दुर्लभ होती जा रही हैं। इसके परिणामस्वरूप देश का विशाल ग्रामीण क्षेत्र दूध से प्रतिदिन अधिकाधिक वञ्चित होता जा रहा है और ग्रामीण बच्चे दूध के अभाव में पोषक तत्त्वों से वञ्चित होने के कारण रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। इस कारण गाँवों में रतौन्धे की बीमारी बढ़ती जा रही है और खेतों का विकास अवरुद्ध हो रहा है।

८—गरीब किसानों के लिए बैलों का मिलना कठिन हो रहा है। इसलिए छोटे किसान अपनी उपज बढ़ाने में असमर्थ हो रहे हैं।

९—जितनी चिन्ता और व्यवस्था संकरित गायों की करनी पड़ती है उतनी अपनी देशी गायों की की जाए तो हमारी गाएँ संकरित गायों के बराबर और कुछ-कुछ नस्लें उनसे भी अधिक दूध दे सकती हैं। देशी गायों के लिए अपने देश की जल-वायु अनुकूल बैठती है, अतः उन्हें चिकित्सा की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता पड़ती है।

१०—देशी गायों के बछड़े शत-प्रतिशत अच्छे बैलों की दृष्टि से बहुत अच्छे हैं। उत्तर भारत में साहीवाल, हरियाणा, राठी, थारपारकर, लालसिंधी, कांकरेज, गीर आदि नस्लें ऐसी हैं जिनका विकास किया जाए तो विदेशी नस्लों से अधिक दूध देनेवाली तथा बढ़िया बैल देनेवाली सिद्ध हो सकती हैं। दक्षिण में भी ओंगोल आदि अनेक नस्लें हैं जिनका विकास हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। देशी नस्लों में अनेक नस्लें ऐसी हैं जो दूध बहुत दे सकती हैं, किन्तु उनके बैल प्रथम श्रेणी के सिद्ध नहीं होते। कुछ नस्लें ऐसी हैं जिनके बैल सर्वोत्तम होते हैं, किन्तु उनका दूध अधिक नहीं हो पाता। ऐसी कुछ

न्यायपुस्तक में व्यवस्था भी लिखी है कि जो पशु दुर्बल और रोगी हों उनको कष्ट न दिया जावे और जितना बोझ सुखपूर्वक उठा सकें उतना ही उनपर धरा जावे। श्रीमती राजराजेश्वरी श्रीविक्टोरिया महाराणी का विज्ञापन भी प्रसिद्ध है कि इन पशुओं को जो-जो दु:ख दिया जाता है वह न दिया जावे, तो क्या भला मार डालने से भी अधिक कोई दु:ख होता है? क्या फाँसी से अधिक दु:ख बन्दीगृह में होता है? जिस किसी अपराधी से पूछा जाए कि तू फाँसी चढ़ने में प्रसन्न है वा बन्दीघर के रहने में? तो वह स्पष्ट कहेगा कि फाँसी में नहीं, किन्तु बन्दीघर के रहने में।

और जो कोई मनुष्य भोजन को उपस्थित हो, उसके आगे से भोजन

नस्लों के परस्पर क्रासिंग के प्रयोग किये जाएँ तो देशी नस्लों में से ही ऐसी नस्लें विकसित हो सकती हैं जो दूध भी पर्याप्त दें तथा बढ़िया बैल भी उपलब्ध करा सकें।

न्याय पुस्तक—यह संकेत अंग्रेज़ी राज्य में प्रचलित १८६० संशोधित १९६० के 'Prevention of Cruelty to animals Act' की ओर है जिसके अनुसार किसी पशु पर नियत भार से अधिक बोझ नहीं लादा जा सकता था, परन्तु उसकी हत्या करने पर कोई रोक नहीं थी। सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में अंग्रेज़ी राज्य के विषय में ऋषि ने लिखा था—

जङ्गल के घास-पात पर पशुओं का अधिकार—

''कितनी बात हमको अपनी बुद्धि से अच्छी मालूम नहीं देती हैं, उनका प्रकाश करते हैं—एक तो नोन और पौन रोटी में जो कर लिया जाता है, वह मुझको अच्छा मालूम नहीं देता, क्योंकि नोन के बिना दरिद्र का भी निर्वाह नहीं होता, किन्तु सबको नोन की आवश्यकता होती है और वे मेहनत-मजदूरी से जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं; उनके ऊपर भी नोन का कर दण्ड-तुल्य रहता है। इससे दरिद्रों को क्लेश पहुँचता है। इनके (मद्यादिकों के) उपर ही कर लगना चाहिए और लवणादिकों पर नहीं लगना चाहिए। पौन रोटी पर कर से भी गरीबों को बहुत क्लेश होता है, क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले-आये वा लकड़ी का भार उठा लाये, उनके ऊपर कौड़ियों का कर लगने से भी उनको अवश्य क्लेश होता होगा। इससे पौन रोटी का जो कर स्थापन करना-सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं''।

—स.प्र. प्रथम संस्करण पृष्ठ ३८४-८५

''और गाय-बैल, छेरी और भेड़ें आदिक मारे जाते हैं, इससे प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है। जो बैल आर्यावर्त्त में पाँच रुपयों में आता था, सो अब (सन् १८७५ में) तीस में भी नहीं आता।''

—वही, पृष्ठ ३८९

के पदार्थ उठा लिये जावें और उसको वहाँ से दूर किया जावे, तो क्या वह सुख मानेगा? ऐसे ही आजकल के समय में कोई गाय आदि पशु सरकारी जङ्गल में जाकर घास और पत्ता जोकि उन्हीं के भोजनार्थ हैं बिना महसूल दिये खावें वा खाने को जावें, तो बेचारे उन पशुओं और उनके स्वामियों की दुर्दशा होती है। जङ्गल में आग लग जावे तो कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु वे पशु न खाने पावें। हम कहते हैं कि किसी अति क्षुधातुर राजा वा राजपुरुष के सामने आये चावल आदि वा डबलरोटी आदि छीनकर न खाने देवें और उनकी दुर्दशा की जावे, तो इनको दु:ख विदित न होगा क्या? वैसा ही उन पशु-पक्षियों और उनके स्वामियों को न होता होगा?

ध्यान देकर सुनिए कि जैसा दु:ख सुख अपने को होता है, वैसा ही औरों को भी समझा कीजिए और यह भी ध्यान में रखिए कि वे पशु आदि और उनके स्वामी तथा खेती आदि कर्म करनेवाले प्रजा के पशु आदि और मनुष्यों के अधिक पुरुषार्थ ही से राजा का ऐश्वर्य अधिक बढ़ता और न्यून होने से नष्ट हो जाता है, इसीलिए राजा प्रजा से कर

यह नमक कर वही है जिसके विरुद्ध महात्मा गाँधी ने ऋषि दयानन्द के उक्त लेख के ५५ वर्ष के बाद सन् १९३० में नमक सत्याग्रह के नाम से देशव्यापी आन्दोलन छेड़ा था। परमेश्वर ने अपनी समस्त प्रजा के लिए व्यवस्था यथावत् कर रक्खी है। बालक के जन्म लेने के साथ ही उसकी माँ के स्तनों में दूध आ जाता है। फलाहारी प्राणियों के लिए वृक्षों पर फल लगे मिलते हैं। घास-पात खानेवालों के लिए धरती पर घास और तरह-तरह की ओषधि-वनस्पति खड़ी मिलती है और मांसाहारी प्राणियों के भोग्य क्षुद्र प्राणी जङ्गल में घूमते मिलते हैं। इसी व्यवस्था में मनुष्यों के लिए उपयोगी पशुओं का खाद्य भी जङ्गलों में मिलता है। उनके लिए यह खाद्य प्रकृतिप्रदत्त है, इसलिए उसपर उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसमें किसी प्रकार से बाधा डालना अथवा टेक्स लगाना उनके प्रति अन्याय है और खाने के लिए उनके वहाँ जाने पर डण्डे बरसाकर भगा देना घोर अत्याचार है। 'सबै भूमि गोपाल की' समझकर पशुओं को स्वतन्त्र विचरने देना चाहिए अथवा राज्य की ओर से योजनाबद्ध ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें प्राणिमात्र को भरपेट भोजन मिले। मानव को मानवीय व्यवहार करना चाहिए।

प्रजा की रक्षार्थ राजा—सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में स्वामीजी ने लिखा है—''राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो (कर के रूप में) धन लेवे तो भी इस प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर कष्ट न पावें।'' समाजवाद और साम्यवाद के समर्थक

लेता है कि उनकी रक्षा यथावत् करे, न कि राजा और प्रजा के जो सुख के कारण गाय आदि पशु हैं उनका नाश किया जावे। इसलिए आज तक जो हुआ सो हुआ, आगे आँखें खोलकर सबके हानिकारक कर्मों को न कीजिए और न करने दीजिए। हाँ, हम लोगों का यही काम है कि आप लोगों को भलाई और बुराई के कामों को जता देवें और आप लोगों का यही काम है कि पक्षपात छोड़ सबकी रक्षा और बढ़ती करने में तत्पर रहें। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर हम और आपपर पूर्ण कृपा करें कि जिससे हम और आप लोग विश्व के हानिकारक कर्मों को छोड़ सर्वोपकारक कर्मों को करके सब लोग आनन्द में रहें। इन सब बातों को सुन मत डालना, किन्तु सुन रखना, इन अनाथ पशुओं के प्राणों को शीघ्र बचाना।

देखें कि ईश्वर और धर्म में आस्था रखनेवाला मनुष्य भी किसानों और मजदूरों का हितैषी हो सकता है। सत्य तो यह है कि छोटों और असहायों के प्रति जो स्नेह और सहानुभूति एक आस्तिक के हृदय में हो सकती है, वह नास्तिक के हृदय में कदापि नहीं हो सकती। आस्तिक को अन्त:करण से प्रेरणा मिलती है जो स्वाभाविक है, किन्तु नास्तिक को राज्य से आदेश मिलता है जो नैमित्तिक है। स्वामीजी ने किसान आदि को राजाओं का राजा माना है, क्योंकि उन्हीं के परिश्रम पर प्राणिमात्र का सुख निर्भर करता है। राजा किसानों का रक्षक है, शोषक नहीं। उदयपुर नरेश महाराणा सज्जनसिंह को राजा के कर्त्तव्यों का निर्देश करते हुए स्वामीजी लिखते हैं—''जैसे राजा और कृषीवलादि प्रजा सुखी रहे वैसा कर-प्रबन्ध प्रजा में स्थापित करे और उन्हीं कृषिवलादि को सब राज्य के सुख का मूलकारण समझ उनसे पितृवत् वर्ते।''

—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५९८

जिस प्रकार समाज किसान के बिना जीवित नहीं रह सकता वैसे ही किसान गाय-बैल के बिना जीवित नहीं रह सकता। वही तो उसकी रीढ़ की हड्डी है। प्रजा के बिना राजा की कल्पना नहीं की जा सकती। राजा और प्रजा दोनों के सुख का कारण गाय है। इसलिए स्वामीजी ने चेतावनी के स्वर में कहा है—''आज तक जो हुआ सो हुआ आगे आँख खोलकर सबके हानिकारक कर्मों को न कीजिए और न करने दीजिए। हमारा काम जता देना है..... इन बातों को सुन मत डालना, किन्तु सुन रखना..... अनाथ पशुओं के प्राणों को बचाना।'' हम पहले लिख आये हैं कि अजमेर में कर्नल ब्रुक्स से बातचीत करते हुए स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया था कि ''यदि गोहत्या बन्द नहीं होगी तो १८५७ को फिर दुहराया जा सकता है।'' अंग्रेज सरकार को गोकरुणानिधि में राजद्रोह की गन्ध आने लगी थी।

हे महाराजाधिराज जगदीश्वर! जो इनको कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हमसे कराने में शीघ्र उद्यत हूजिए॥

इति समीक्षा-प्रकरणम्।

जब कोई नहीं सुनता तो दयानन्द अपने प्रभु की शरण में जाकर प्रार्थना करता है—"हे महाराजाधिराज जगदीश्वर! जो इनको कोई न बचावे तो आप इनकी रक्षा करने और हमसे कराने में शीघ्र उद्यत हूजिए।"

वर्तमान स्थिति

सन् १९६७ में भारत सरकार की ओर से बम्बई में गोसंवर्धन कान्फ्रैंस का आयोजन किया गया था। उसकी अध्यक्षता तत्कालीन कृषिमन्त्री बाबू जगजीवन ने की थी और उद्घाटन प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने। उसमें पंजाब का प्रतिनिधित्व सरदार बूटासिंह ने किया था और हरियाणा का मैंने। मुख्य प्रस्ताव तैयार करने का काम संयुक्तरूप से मुझे और सरदार बूटासिंह को सौंपा गया था। प्रस्ताव को पेश करते हुए मैंने (इस पुस्तक के लेखक ने) इस बात पर बल दिया था कि समूचे देश में एक साथ गोवध बन्द करने के लिए केन्द्रीय कानून बनना चाहिए। इसपर इन्दिराजी बोलीं कि यह विषय केन्द्रीय सूची में न होने से केन्द्र को कानून बनाने का अधिकार नहीं है। मैंने बीच में टोकते हुए कहा कि संविधान में तनिक-सा संशोधन करके इस विषय को राज्यों की सूची से हटाकर केन्द्रीय सूची में डालना क्या मुश्किल है? सचाई यह है कि वह दिल से नहीं चाहती थीं। यही कराण था कि आचार्य विनोबा भावे के आमरण अनशन को तुड़वाने के लिए कानून बनवाने का आश्वासन देने और १५३ सांसदों के अनुरोध करने पर भी उन्होंने कानून बनाने से स्पष्टतः इनकार कर दिया। १६ सितम्बर १९९० को राजस्थान के सांसद् श्री गुमानमल लोढा ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया था। कोरम पूरा न होने से उसपर विचार नहीं हो सका। स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही है, जैसाकि भारत सरकार की १९९० में घोषणा योजना से स्पष्ट है—

१—सन् १९८९-९० में मांस के निर्यात से सरकार को ११० करोड़ रुपये मिले थे। १९९०-९१ में ५०० करोड़ रुपये का निर्यात किया जाएगा।

२—निम्नलिखित स्थानों पर नये बूचड़खाने खोले जाएँगे—

ग्वालियर, गोरखपुर, जोधपुर, तेजपुर, इण्डीगल, सिरसा, श्रीनगर, जम्मू, कलाईकुण्डा, हैदराबाद, त्रिवेन्द्रम, बंगलौर, पटना, नागपुर, कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, दिल्ली, हिण्डन, आगरा, अम्बाला।

३—निम्नलिखित स्थानों पर पहले से चालू बूचड़खानों की क्षमता बढ़ाई जाएगी—

इलाहाबाद, वाराणसी, अलीगढ़, जालन्धर, पुणे, बजबज, सइदापेट, पेराम्बुर, बड़ीदमन, बड़ीदीव, चण्डीगढ़।

अर्थात् २२ नये बूचड़खाने खोले जाएँगे और ११ पहले से चालू बूचड़खानों में पहले से अधिक पशु काटे जाएँगे। यह सब ५ अरब रुपये की विदेशी मुद्रा कमाने के लोभ में किया जाएगा।

उधर भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी ने 'इण्डिया टुटे' के मार्च १९९० के अंक में प्रकाशित वक्तव्य में कह दिया कि वेदों में लिखा है कि भगवान् राम और कृष्ण दोनों मांसाहारी थे, यद्यपि मेरे रजिस्टर्ड पत्र और वकील के नोटिस के जवाब में भी वे बता नहीं सके कि वेदों में यह कहाँ लिखा है? आगे आनेवाली सरकारों से क्या आशा की जा सकती है।

अहमदाबाद से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक साधना ने अपने ९ फरवरी के अंक में लिखा था कि खाड़ी क्षेत्र में मेहमान बनी अमरीकी सेना का पेट भरने के लिए बम्बई एवं अन्य स्थानों से प्रतिदिन तीन हज़ार गौओं का ताज़ा मांस भेजा जा रहा है। दिल्ली स्थित अमरीकी राजदूत के कहने पर महाराष्ट्र सरकार ने कुछ बड़े व्यापारियों को इसके लिए लायसेंस दिये हैं।

गोवध : वर्त्तमान वैधानिक स्थिति

वर्ष १९८२ में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने स्वामी केदारनाथ ब्रह्मचारी तथा २६ अन्य व्यक्तियों की याचिका पर निर्णय दे दिया था कि मुसलमानों को धार्मिक अधिकार के नाम पर बकरीद के अवसर पर गोवध की अनुमति देना ग़लत है। १९७१ में दायर इस याचिका पर इस निर्णय से वादी पक्ष को कोई राहत नहीं मिल पायी, क्योंकि पश्चिम बंगाल में सत्तारूढ़ मार्क्सवादी सरकार ने इस निर्णय के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में विशेष अपील याचिका दायर कर दी तथा उच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करने पर रोक का आदेश भी प्राप्त कर लिया।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति अनिलकुमार सेन और न्यायमूर्ति बी०सी० चक्रवर्ती ने अपने निर्णय के खिलाफ अपील की अनुमति पश्चिम बंगाल सरकार को नहीं दी थी। इस खण्डपीठ का कहना था कि हमने अपना निर्णय उच्चतम न्यायालय के पूर्व निर्णयों के आधार पर ही दिया है। १९५८ में उच्चतम न्यायालय ने एम०एच० कुरैशी बनाम बिहार सरकार के मुकदमे में इसी मुद्दे पर स्पष्ट निर्णय दिया था। तब खण्डपीठ ने कहा था कि बकरीद पर गोवध करना मुसलमान के लिए धार्मिक कार्यों का आवश्यक हिस्सा नहीं है।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय में इस निर्णय की भी चर्चा की गई है। इसके बाद भी पश्चिम बंगाल की सरकार ने उच्च न्यायालय के निर्णय के खिलाफ उच्चतम न्यायालय में विशेष अपील याचिका दायर की।

साथ ही पश्चिम बंगाल सरकार ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय पर रोक लगाने का अनुरोध भी उच्चतम न्यायालय से किया। इसे ९ सितम्बर १९८३ को मान लिया गया। इसी स्थगन आदेश के आधार पर पश्चिम बंगाल में अभी तक गोवध की अनुमति दी जाती है।

इस स्थगन आदेश को रद्द करने के लिए हिन्दू नागरिकों की ओर से २१ फरवरी १९८५ को उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर की गई थी। इसपर विद्वान् न्यायाधीशों ने स्थगन आदेश निरस्त करने के स्थान पर मूल याचिका पर शीघ्र सुनवाई करवाकर इस मामले पर अंतिम निर्णय जल्दी देने का फैसला किया। लेकिन इसके बाद भी इस मुद्दे पर अंतिम सुनवाई का नम्बर वर्ष १९९४ के सितम्बर मास में ही आ पाया। दो दिन चली इस सुनवाई में दोनों पक्षों के तर्क पूरे हो गये।

संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों के आधार पर देश के अनेक राज्यों ने गोहत्या पर पूर्ण रोक लगा रक्खी है। लेकिन पश्चिम बंगाल और केरल ने देश की ८५ प्रतिशत जनसंख्या की भावनाओं की चिन्ता न करके गोवध की अनुमति दे रक्खी है।

पश्चिम बंगाल सरकार पशु-वध नियन्त्रण अधिनियम १९५० के तहत पशुओं को काटने की अनुमति देती है। इनमें साँड़, गाय, भैंस जैसे पशु शामिल नहीं हैं। लेकिन इसकी धारा १२ के तहत राज्य सरकार को विशेष अधिकार प्राप्त है कि धार्मिक, चिकित्सा और अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर इन पशुओं के वध की भी अनुमति दी जा सकती है।

धारा १२ के तहत मिली छूट के आधार पर बकरीद पर गायों, बछड़ों, साँड़ों और बैलों के वध की अनुमति १९५० के बाद से दी जाती रही है। इसमें उनकी उम्र या संख्या पर भी नियन्त्रण नहीं रक्खा जाता है। अन्यथा इस कानून के तहत हर पशु को काटने से पहले नगरपालिका के अध्यक्ष या पशु-चिकित्सक का प्रमाणपत्र आवश्यक होता है। इस प्रावधान से केवल स्वस्थ पशुओं को ही मांस के लिए काटने की अनुमति दी जाती है। बीमार पशुओं का मांस खाने से मनुष्यों में भी बीमारी फैलने की आशंका रहती है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद ४८ में कहा गया है कि यह सभी राज्यों के लिए आवश्यक है कि वे गाय, बछड़ों तथा अन्य दूध देनेवाले पशुओं के वध पर रोक लगाएँ। इस आधार पर बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश ने गोवध पर पूर्ण प्रतिबन्ध के कानून भी लागू कर रक्खे हैं।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा

(२) इस सभा के नियम

१—सब विश्व को विविध सुख पहुँचाना इस सभा का मुख्य उद्देश्य है, किसी की हानि करना प्रयोजन नहीं।

२—जो-जो पदार्थ सृष्टिक्रमानुकूल जिस-जिस प्रकार से अधिक उपकार में आवे, उस-उससे आप्ताभिप्रायानुसार यथायोग्य सर्वहित सिद्ध करना इस सभा का परम पुरुषार्थ है।

३—जिस-जिस कर्म से बहुत हानि और थोड़ा लाभ हो, उस-उस को सभा कर्त्तव्य नहीं समझती।

४—जो-जो मनुष्य इस परमहितकारी कार्य में तन, मन, धन से प्रयत्न और सहायता करे, वह-वह इस सभा में प्रतिष्ठा के योग्य होवे।

५—जोकि यह कार्य सर्वहितकारी है, इसलिए यह सभा भूगोलस्थ मनुष्यजाति से सहायता की पूरी आशा रखती है।

६—जो-जो सभा देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में परोपकार ही करना अभीष्ट रखती है, वह-वह इस सभा की सहायकारिणी समझी जाती है।

७—जो-जो इन राजनीति वा प्रजा के अभीष्ट से विरुद्ध, स्वार्थी, क्रोधी और अविद्यादि दोषों से प्रमत्त होकर राजा-प्रजा के लिए अनिष्ट कर्म करे वह-वह इस सभा का सम्बन्धी न समझा जावे।

(३) उपनियम

नाम

१—इस सभा का नाम ''गोकृष्यादिरक्षिणी सभा'' है।

उद्देश

२—इस सभा के उद्देश वे ही हैं जोकि इसके नियमों में वर्णन किये गये हैं।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा

इस सभा का संगठन स्पष्टत: सार्वदेशिक है, जैसाकि इसके नियमों में आये 'विश्व', 'सर्वहितकारी', 'भूगोलस्थ', 'देश-देशान्तर और द्वीप-देशान्तर'-जैसे शब्दों से सिद्ध है। इसके उपनियम आर्यसमाज के

३—जो लोग इस सभा में नाम लिखाना चाहें§ और इसके उद्देशानुकूल आचरण करना चाहें वे इस सभा में प्रविष्ट हो सकते हैं, परन्तु उनकी आयु १८ वर्ष से न्यून न हो। जो लोग इस सभा में प्रविष्ट हों वे 'गोरक्षकसभासद्' कहलावेंगे।

४—जिनका नाम इस सभा में सदाचार से एक वर्ष रहा हो और वे अपने आय का शतांश वा अधिक मासिक वा वार्षिक इस सभा को दें, वे 'गोरक्षकसभासद्' हो सकते हैं और सम्मति देने का अधिकार केवल गोरक्षकसभासदों ही को होगा।

(अ) गोरक्षकसभासद् बनने के लिए गोकृष्यादिरक्षिणी सभा में वर्षभर नाम रहने का नियम किसी व्यक्ति के लिए अन्तरङ्ग सभा शिथिल भी कर सकती है। इस सभा में वर्षभर रहकर गोरक्षकसभासद् बनने का नियम गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के दूसरे वर्ष से काम आवेगा।

(ब) राजा, सरदार, बड़े-बड़े साहूकार आदि को इस सभा के सभासद् बनने के लिए शंताश ही देना आवश्यक नहीं, वे एकबार वा मासिक वा वार्षिक अपने उत्साह वा सामर्थ्यानुसार दे सकते हैं।

(ज) अन्तरङ्ग सभा किसी विशेष हेतु से चन्दा दनेवाले पुरुष को भी गोरक्षसभासद् बना सकती है।

(द) नीचे लिखी हुई विशेष दशाओं में उन सभासदों की भी, जो गोरक्षकसभासद् नहीं बने, सम्मति-ली जा सकती है—

(१) जब नियमों में न्यूनाधिक शोधन करना हो।

(२) जबकि विशेष अवस्था में अन्तरङ्ग सभा उनकी सम्मति लेना योग्य और आवश्यक समझे।

(३) जो इस सभा के उद्देश के विरुद्ध कर्म करेगा वह न तो गोरक्षक और न गोरक्षकसभासद् गिना जावेगा।

(४) गोरक्षकसभासद् दो प्रकार के होंगे—एक साधारण और दूसरे माननीय। माननीय गोरक्षकसभासद् वे होंगे जो शतांश वा १० रु०

---

§ इस सभा में नाम लिखाने के लिए मन्त्री के पास इस प्रकार का पत्र भेजना चाहिए कि—'मैं प्रसन्नतापूर्वक इस सभा के उद्देशानुकूल, जोकि नियमों में वर्णन किये हैं, आचरण स्वीकार करता हूँ। मेरा नाम इस सभा में लिख लीजिए, परन्तु अन्तरङ्गसभा को अधिकार रहेगा कि किसी विशेष हेतु से उनका नाम इस सभा में लिखना स्वीकार न करे।

उपनियमों पर आधारित होते हुए भी कई बातों में भिन्न तो हैं ही, व्यावहारिक भी अधिक हैं। उपनियम ११ (समुदाय प्रतिनिधि) अत्यन्त उपयोगी है। पहले यह आर्यसमाज के उपनियमों में भी होता था, कुछ वर्ष पूर्व निरस्त कर दिया गया।

मासिक वा इससे अधिक देवें, अथवा एक बार २५० रुपया दें वा जिनको अन्तरङ्ग सभा विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों से माननीय समझे।

५—यह सभा दो प्रकार की होगी एक साधारण, दूसरी अन्तरङ्ग।

६—साधारणसभा तीन प्रकार की होगी—१. मासिक २. षाण्मासिक और ३. नैमित्तिक।

७—मासिकसभा—प्रतिमास एक बार हुआ करेगी, उसमें महीने-भर का आय-व्यय और सभा के कार्यकर्ताओं की क्रियाओं का वर्णन किया जावे जोकि कथन योग्य हो।

८—षाण्मासिक सभा—कार्तिक और वैशाख के अन्त में हुआ करे, उसमें अस्तोक्त विचार, मासिक सभा का कार्य प्रत्येक प्रकार का आय-व्यय समझना और समझाना होवे।

९—नैमित्तिक सभा—जब कभी मन्त्री, प्रधान और अन्तरङ्ग सभा आवश्यक कार्य जाने उसी समय वह सभा हो और उसमें विशेष कार्यों का प्रबन्ध होवे।

इस सभा को अधिक सक्रिय रखने के लिए मासिक तथा षाण्मासिक (जिसका समय-कार्तिक व वैशाख भी नियत कर दिया गया है) बैठकों का भी प्राबधान कर दिया गया है।

सभासदों के लिए वेदादि विद्या का जानना आवश्यक है।

किसी पद पर एक से अधिक व्यक्ति नियुक्त हों तो प्रत्येक को कुछ-न-कुछ कार्य सौंपा जाए।

प्रत्येक सभासद का समय पर आना और बराबर ठहरना आवश्यक ठहराया है। किसी सभासद् की स्त्री के विधवा या सन्तान के अनाथ हो जाने पर उनकी रक्षार्थ प्रबन्ध करना सभा का कर्त्तव्य है।

नियम संख्या ३७ में किसी सभासद द्वारा सभा के धन का अपहरण करने (भ्रष्टाचारी होने) पर कहा गया है कि 'वह गोहत्या का पाप लगने से इस लोक और परलोक में महा दुःखभागी अवश्य होगा।'

नियम संख्या ४२ के अनुसार बछड़े-बछड़ी के पैदा होने के बाद पहले महीने पूरा, दूसरे महीने में तीन थनों का और तीसरे महीने के आरम्भ से आधा दूध बछड़े-बछड़ी को पिलाने का आदेश दिया गया है।

असमर्थ पशुओं के पालन और रक्षण का दायित्व सभा का होगा।

जिस प्रकार नियम ३७ में भ्रष्टाचारी के लिए 'महादुःखभागी' होने का मानो शाप दिया गया है, उसी प्रकार ४५वें नियम में मानो वरदान दिया गया है कि "यह बहुत उपकारी कार्य है, इसलिए इसका करनेवाला इस लोक और परलोक में स्वर्ग अर्थात् पूर्ण सुखों को अवश्य प्राप्त होता है।"

१०—अन्तरङ्गसभा—सभा के समस्त कार्यप्रबन्ध के लिए एक अन्तरङ्ग सभा नियत की जावे और इसमें तीन प्रकार के सभासद् हों—एक प्रतिनिधि, दूसरे प्रतिष्ठित और तीसरे अधिकारी।

११—प्रतिनिधि सभासद् अपने-अपने समुदायों के प्रतिनिधि होंगे और उन्हें उनके समुदाय नियत करेंगे। कोई समुदाय जब चाहे अपने प्रतिनिधि को बदल सकता है।

प्रतिनिधि सभासदों के विशेष कार्य ये होंगे—

(अ) अपने-अपने समुदायों की सम्मति से अपने को विज्ञ रखना।

(ब) अपने-अपने समुदायों को अन्तरङ्ग सभा के कार्य, जोकि प्रकट करने योग्य हों, बतलाना।

(ज) अपने-अपने समुदायों से चन्दा इकट्ठा करके कोषाध्यक्ष को देना।

१२—प्रतिष्ठित सभासद् विशेष गुणों के करण प्रायः वार्षिक, नैमित्तिक और साधारण सभा में नियत किये जावें, प्रतिष्ठित सभासद् अन्तरङ्गसभा में एक तिहाई से अधिक न हों।

१३—प्रति वैशाख की सभा में अन्तरङ्गसभा के प्रतिष्ठित अधिकारी वार्षिक, साधारण सभा में फिर से नियत किये जावें और कोई पुराना प्रतिष्ठित और अधिकारी पुनर्वार नियुक्त हो सकता है।

१४—जब वर्ष के पहले किसी प्रतिष्ठित सभासद् और अधिकारी का स्थान रिक्त हो, तो अन्तरङ्गसभा आप ही उसके स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकती है।

१५—अन्तरङ्गसभा कार्य के प्रबन्ध-निमित्त उचित व्यवस्था बना सकती है, परन्तु वह नियमों और उपनियमों से विरुद्ध न हो।

१६—अन्तरङ्गसभा किसी विशेष कार्य के करने और सोचने के लिए अपने में से सभासदों और विशेष गुण रखनेवाले सभासदों को मिलाकर उपसभा नियत कर सकती है।

१७—अन्तरङ्गसभा का कोई सभासद् मन्त्री को एक सप्ताह के पहले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जावे और वह विषय प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जावे, परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरङ्गसभा के पाँच सभासद् सम्मति दें, वह अवश्य निवेदन करना ही पड़ेगा।

१८—दो सप्ताह के पीछे अन्तरङ्गसभा अवश्य हुआ करे और मन्त्री और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरङ्गसभा के पाँच सभासद् मन्त्री को पत्र लिखें, तो भी हो सकती है।

१९—अधिकारी छह प्रकार के होंगे—१. प्रधान, २. उपप्रधान, ३. मन्त्री, ४. उपमन्त्री, ५. कोषाध्यक्ष, ६. पुस्तकाध्यक्ष।

मन्त्री, कोषाध्यक्ष इनके अधिकारों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक भी नियत हो सकते हैं और जब किसी अधिकार पर एक से अधिक नियत हों तो अन्तरङ्गसभा उन्हें कार्य बाँट देवे।

२०—**प्रधान**—प्रधान के निम्नलिखित अधिकार और काम होंवे—

(१) प्रधान अन्तरङ्गसभा आदि सब सभाओं का सभापति समझा जावे।

(२) सदा सभा के सब कार्यों के यथावत् प्रबन्ध और सर्वथा उन्नति और रक्षा में तत्पर रहे।

सभा के प्रत्येक कार्य को देखे कि वे नियमानुसार किये जाते हैं वा नहीं और स्वयं नियमानुसार चले।

(३) यदि कोई विषय कठिन और आवश्यक प्रतीत हो, तो उसका यथोचित प्रबन्ध तत्काल करे और उसकी हानि में वही उत्तर देवे।

(४) प्रधान अपने प्रधानत्व के कारण सब उपसभाओं का जिन्हें अन्तरङ्गसभा संस्थापन करे, सभासद् हो सकता है।

२१—**उपप्रधान**—इसके ये कार्य कर्त्तव्य हैं—

प्रधान की अनुपस्थिति में उसका प्रतिनिधि होवे। यदि दो वा अधिक उपप्रधान हों तो सभा की सम्मति के अनुसार उनमें से कोई एक प्रतिनिधि किया जावे, परन्तु सभा के सब कार्य में प्रधान को सहायता देनी उसका मुख्य कार्य है।

२२—**मन्त्री**—मन्त्री के निम्नलिखि अधिकार और कार्य हैं—

(१) अन्तरङ्गसभा की आज्ञानुसार सभा की ओर से सबके साथ पत्र-व्यवहार रखना।

(२) सभाओं का वृत्तान्त लिखना औंर दूसरी सभा होने से पहले ही पूर्व वृत्तान्त पुस्तक में लिखना वा लिखवाना।

(३) मासिक अन्तरङ्ग सभाओं में उन गोरक्षकों वा गोरक्षक सभासदों के नाम सुनाना जोकि पिछली मासिक सभा के पीछे सभा में प्रविष्ट वा उससे पृथक् हुए हों।

(४) सामान्य प्रकार से भृत्यों के कार्य पर दृष्टि रखना और सभा के नियम, उपनियम और व्यवस्थाओं के पालन पर ध्यान रखना।

(५) इस बात का भी ध्यान रखना कि प्रत्येक गोरक्षक-सभासद् किसी-न-किसी समुदाय में हों और इसका भी कि प्रत्येक समुदाय ने अपनी ओर से अन्तरङ्गसभा में प्रतिनिधि दिया होवे।

(६) पहले विज्ञापन दिये पर मान्य पुरुषों को सत्कारपूर्वक बिठाना।

(७) प्रत्येक सभा में नियत काल पर आना और बराबर ठहरना।

२३—**कोषाध्यक्ष**—कोषाध्यक्ष के नीचे लिखे अधिकार और

कार्य हैं—

(१) सभा के सब आयधन का लेना उसकी रसीद देना और उसको यथोचित रखना।

(२) किसी को अन्तरङ्गसभा की आज्ञा के बिना रुपया न देना, किन्तु मन्त्री और प्रधान को भी उस प्रमाण से देवे जितना अन्तरङ्गसभा ने उनके लिए नियत किया हो, अधिक न देना और उस धन के उचित व्यय के लिए वही अधिकारी, जिसके द्वारा व्यय हुआ हो, उत्तरदाता होवे।

(३) सब धन के व्यय का रीतिपूर्वक बहीखाता रखना और प्रतिमास अन्तरङ्गसभा में हिसाब बहीखातेसमेत परताल और स्वीकार के लिए निवेदन करना।

२४—**पुस्तकाध्यक्ष**—पुस्तकाध्यक्ष के अधिकार और कार्य ये होवें—

(१) जो पुस्तकालय में सभा की स्थिर और विक्रय की पुस्तक हों उन सबकी रक्षा करे और पुस्तकालय सम्बन्धी हिसाब भी रक्खे और पुस्तकों के लेने-देने का कार्य भी करे।

मिश्रित नियम

२५—सब गोरक्षक-सभासदों की सम्मति निम्नलिखित दशाओं में ली-जावे—

(१) अन्तरङ्गसभा का यह निश्चय हो कि किसी साधारणसभा के सिद्धान्त पर निश्चय न करना चाहिए, किन्तु गोरक्षक-सभासदों की सम्मति जाननी चाहिए।

(२) सब गोरक्षक सभासदों का पाँचवाँ वा अधिक अंश इस निमित्त मन्त्री के पास पत्र लिख भेजे।

(३) जब बहुत-से व्ययसम्बन्धी वा प्रबन्धसम्बन्धी नियम अथवा व्यवस्था-सम्बन्धी कोई मुख्य विचारादि करना हो। अथवा जब अन्तरङ्गसभा सब गोरक्षक सभासदों की सम्मति जाननी चाहे।

२६—जब किसी सभा में थोड़े-से समय के लिए कोई अधिकारी उपस्थित न हो, तो उस समय के लिए किसी योग्यपुरुष को अन्तरङ्गसभा नियत कर सकती है।

२७—यदि किसी अधिकारी के स्थान पर वार्षिक साधारण सभा में कोई पुरुष नियत न किया जावे, तो जब तक उसके स्थान पर कोई व्यक्ति नियत न किया जाए, वही अधिकारी अपना काम करता रहे।

२८—सब सभा और उपसभाओं का वृत्तान्त लिखा जाया करे और उसको सब गोरक्षकसभासद् देख सकते हैं।

२९—सब सभाओं का कार्य तब आरम्भ हो जब न्यून-से-न्यून

एक तिहाई सभासद् उपस्थित हों।

३०—सब सभाओं और उपसभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित हों।

३१—आय का दशांश समुदाय में रक्खा जावे।

३२—सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को इस सभा की उपयोगी वेदादि विद्या जाननी और जनानी चाहिए।

३३—सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द समय में सभा की उन्नति के लिए उदारता और पूर्ण प्रेमदृष्टि रक्खें।

३४—सब गोरक्षक और गोरक्षक-सभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें, आनन्दोत्सव में निमन्त्रण पर सहायक हों, छोटाई-बड़ाई न गिनें।

३५—कोई गोरक्षक भाई किसी हेतु से अनाथ वा किसी की स्त्री विधवा अथवा सन्तान अनाथ हो जावे, अर्थात् उनका जीवन-निर्वाह न हो सकता हो और यदि गोकृष्यादिरक्षिणी सभा उनको निश्चित जान ले तो यह सभा उनकी रक्षा में यथाशक्ति यथोचित प्रबन्ध करे।

३६—यदि गोरक्षक सभासदों में किन्हीं का परस्पर झगड़ा हो, तो उनको उचित है कि वे आपस में समझ लेवें वा गोरक्षक-सभासदों की न्याय-उपसभा द्वारा उसका न्याय करा लें, परन्तु अशक्यावस्था में राजनीति द्वारा भी न्याय करा लेवें।

३७—इस गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के व्यवहार में जितना-जितना लाभ हो वह-वह सर्व-हितकारी काम में लगाया जावे, किन्तु यह महाधन तुच्छ कार्य में व्यय न किया जावे और जो कोई इस गोकृष्यादि की रक्षा के लिए जो धन है उसको चोरी से अपहरण करेगा, वह गोहत्या के पाप लगने से इस लोक और परलोक में महादुःखभागी अवश्य होगा।

३८—सम्प्रति इस सभा के धन का व्यय गवादि पशु लेने, उनका पालन करने, जङ्गल और घास के क्रय करने, उनकी रक्षा के लिए भृत्य वा अधिकारी रखने, तालाब, कूप, बावड़ी अथवा बाड़े के लिए व्यय किया जावे। पुनः अत्युन्नत होने पर सर्वहित कार्य में भी व्यय किया जावे।

३९—सब सज्जनों को उचित है कि इस गोरक्षक धन आदि समुदाय पर स्वार्थ दृष्टि से हानि करना कभी मन से भी न विचारे, किन्तु यथाशक्ति इस व्यवहार की उन्नति में तन, मन, धन से सदा परम प्रयत्न किया ही करें।

४०—इस सभा के सब सभासदों को यह बात अवश्य जाननी चाहिए कि जब गवादि पशु रक्षित होके बहुत बढ़ेंगे तब कृषि आदि कर्म,

दुग्ध-घृत आदि की वृद्धि होकर सब मनुष्यादि को विविध सुख-लाभ अवश्य होगा। इसके बिना सबका हित सिद्ध होना सम्भव नहीं।

४१—देखिए, पूर्वोक्त रीत्यनुसार एक गौ की रक्षा से लाखों मनुष्यादि को लाभ पहुँचना और जिसके मारने से उतने ही की हानि होती है, ऐसे निकृष्ट कर्म के करने को आप्त विद्वान् कभी अच्छा न समझेगा।

४२—इस सभा के जो पशु प्रसूत होंगे उन-उनका दूध एक मास तक उसके बछड़े को पिलाना और अधिक उसी पशु को अन्न के साथ खिला देना चाहिए और दूसरे मास में तीन स्तनों का दूध बछड़े को देना और एक भाग लेना चाहिए, तीसरे मास के आरम्भ से आधा दुह लेना और आधा बछड़े को तब तक दिया करें कि जब तक गौ दूध देवे।

४३—सब सभासदों को उचित है कि जब-जब किसी को स्वरक्षित पशु देवे तब-तब न्यायनियमपूर्वक व्यवस्था-पत्र ले और देकर जब वह पशु असमर्थ हो जाए, उसके काम का न रहे और उसके पालन करने में सामर्थ्य न हो, तो अन्य किसी को न दे, किन्तु पुनरपि सभा के अधीन करे।

४४—इस सभा की अन्तरङ्ग सभा को उचित ही नहीं, किन्तु अत्यावाश्यक है कि उक्त प्रकार से अप्राप्त पशुओं की प्राप्ति, प्राप्तों की रक्षा, रक्षितों की वृद्धि और बढ़े हुए पशुओं से नियमानुसार और सृष्टिक्रमानुकूल उपकार लेना, अपने अधिकार में सदा रखना, अन्य किसी को इसमें स्वाधीनता कभी न देवे।

४५—जोकि यह बहुत उपकारी कार्य है, इसलिए इसका करनेवाला इस लोक और परलोक में स्वर्ग, अर्थात् पूर्ण सुखों को अवश्य प्राप्त होता है।

४६—कोई भी मनुष्य इस सभा के पूर्वोक्त उद्देशों को किये बिना सुखों की सिद्धि नहीं कर सकता।

४७—ये नियम और उपनियम उचित समय पर वा प्रतिवर्ष में यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा घटाये-बढ़ाये जा सकते हैं।

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

धेनुः परा दयापूर्वा यस्यानन्दाद्विराजते।

आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः॥ १॥

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्यासिते दले।

दशम्यां गुरुवारेऽलङ्कृतोऽयं कामधेनुपः॥ २॥

इति गोकरुणानिधिः॥

परिशिष्ट

यहाँ से आगे हम रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह' के आरम्भ में पं० श्री युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित भूमिका से 'गोकरुणानिधि' सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विवरण दे रहे हैं—

गोकरुणानिधि

करुणानिधि दयामय दयानन्द ने अपने कार्यकाल में गौ आदि मूक प्राणियों की रक्षार्थ महान् आन्दोलन किया था। वायसराय तथा भारत सरकार के पास तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षरयुक्त प्रार्थना-पत्र भेजने के लिए भी बहुत उद्योग किया था। इसके लिए अनेक सज्जनों को पत्र भी लिखे थे जो उनके पत्र-व्यवहार में छप चुके हैं। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवनचरित्र पृष्ठ ६७५ से विदित होता है कि इस प्रार्थना-पत्र पर उदयपुर के महाराणा श्री सज्जनसिंह, महाराज जोधपुर और बूँदी ने भी हस्ताक्षर कर दिये थे। यह महान् उद्योग आर्यावर्त्तीय लोगों के उनुत्साह तथा महर्षि के अकाल में काल-कवलित हो जाने से अधूरा ही रह गया। इस प्रयत्न के साथ-साथ इस कार्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से ऋषि ने 'गोकरुणानिधि' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा है।

१. महाराणा सज्जनसिंह ने गो-आदि उपयोगी पशुओं की हत्या बन्द करने के विषय में जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह को पत्र लिखकर राय ली थी। महाराजा जसवन्तसिंह ने इस महत्त्वपूर्ण पत्र का उत्तर संवत् १९३८ पौष वदि ५ मङ्गलवार (सन् १८७६ ता० ५ दिसम्बर) को इस प्रकार दिया—

'म्हारी प्रजा १४,६१,१५६ हिन्दू ने, १,३७,११९ मुसलमान। यां तीन पशु (गाय, बैल और भैंस) नहीं मारिया जावण रा प्रबन्ध में खुशी है और मैं पिण रजामन्द हाँ। संवत् १९३९ पौष वदि ५। खास मुहर दस्तखत—राजराजेश्वर महाराजाधिराज, जसवन्तसिंह, माकाड़, जोधपुर।

जोधपुर नरेश का उक्त पत्र हमारे मित्र जोधपुर निवासी श्री ठाकुर जगदीशसिंहजी गहलोत ने अपने 'राजपूताने का इतिहास' नामक ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के पृष्ठ २८७ पर उद्धृत किया है। श्रीमान् गहलोतजी ने इसकी एक प्रतिलिपि जोधपुर से मुझे भी भेजी थी।

'गोकरुणानिधि' में दो भाग हैं। प्रथम भाग में गो-आदि पशुओं को मारकर खाने की अपेक्षा उनकी रक्षा करके उनके घी-दूध द्वारा अत्यधिक मनुष्यों को लाभ पहुँचना। यह बात गणित द्वारा स्पष्टतया दर्शाई है और मांसाहार के अवगुणों तथा निरामिष भोजन के महत्त्व का भी वर्णन किया है। दूसरे भाग में गोरक्षार्थ स्थापित होनेवाली सभाओं के नियमोपनियमों का उल्लेख है।

ऋषि के १२ जनवरी सन् १८८१ ई० के पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने आगरा में एक 'गोरक्षिणी-सभा' स्थापित की थी और उसके नियमोपनियम भी बनाये थे। देखो—पत्र-व्यवहार पृष्ठ २६६। सम्भव है ये ही नियमोपनियम 'गोकरुणानिधि' के अन्त में छपे हों।

रचना-काल

इस पुस्तक का रचना-काल ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार लिखा है—

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे तपस्यस्यासिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽलंकृतोऽयं कामधेनुपः॥

अर्थात् संवत् १९३७ फाल्गुन वदि १० गुरुवार के दिन यह ग्रन्थ बनकर पूर्ण हुआ।

जीवन-चरित्रानुसार स्वामीजी संवत् १९३७ वि० अगहन कृष्णा १० या ११ से फाल्गुन सुदी १०, २७ या २८ नवम्बर १८८० से १० मार्च ८१ तक आगरा में रहे थे, अतः यह ग्रन्थ आगरा में ही रचा गया। पण्डित देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन-चरित्र पृष्ठ ६३० से विदित होता है कि यह ग्रन्थ छपकर आगरे में ही स्वामीजी के पास पहुँच गया था। उनका लेख इस प्रकार है—

"स्वामीजी ने आगरे में 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तक रची थी और वह छपकर आगरे में ही स्वामीजी के पास आ गई थी। रामरतन नामक एक पुजारी ने उद्योग करके उसकी ६७ रु० की प्रतियाँ बेची थीं।"

ऋषि के ज्येष्ठ सुदि १ संवत् १९३८ के पत्र से भी ज्ञात होता है कि 'गोकरुणानिधि' छपकर आगरे में ही उनके पास पहुँच गई थी।
—देखो पत्रव्यवहार पृष्ठ २९९।

इन दोनों लेखों से प्रतीत होता है कि पुस्तक लिखकर समाप्त करने के बाद छपने के लिए काशी भेजना, उसका छपना, सिलाई होना और ऋषि के पास आगरा वापस पहुँचना, ये सब कार्य अधिक-से-अधिक १५ दिनों के मध्य में ही सम्पन्न हुए, क्योंकि पुस्तक लिखकर समाप्त करने के अनन्तर ऋषि आगरा में केवल १५ दिन ही ठहरे थे।

द्वितीय संस्करण

पण्डित भीमसेन के ऋषि के नाम लिखे हुए पत्रों से विदित होता है कि 'गोकरुणानिधि' का प्रथम संस्करण अतिशीघ्र समाप्त हो गया था और एक वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण करना पड़ा। पुस्तक की इतनी बिक्री का मुख्य कारण ऋषि द्वारा उठाया हुआ गोरक्षा आन्दोलन था।

४ मई १८८२ ई० के भीमसेन के पत्र के अन्त में दयाराम प्रबन्धक वैदिक यन्त्रालय (प्रयाग) ने लिखा है—

"मासिक वेदभाष्य का अङ्क और गोकरुणानिधि जो नई छपी है, वह भेजा है।" —म० मुंशीराम-संगृहीत पत्र-व्यवहार पृष्ठ ४७

इससे विदित होता है कि 'गोकरुणानिधि' का द्वितीय संस्करण अप्रेल सन् १८८१ में छपकर तैयार हुआ होगा।

अंग्रेज़ी अनुवाद

महर्षि गोरक्षा-आन्दोलन की सफलता के लिए इस पुस्तक का अंग्रेज़ी-अनुवाद कराकर राज्याधिकारियों के पास इंगलैण्ड भी भेजना चाहते थे, अतएव उन्होंने इसके अंग्रेज़ी अनुवाद के लिए लाला मूलराज एम० ए० को कई पत्र लिखे। उन्होंने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद करना स्वीकार भी कर लिया, परन्तु चिरकाल तक करके नहीं दिया। इस विषय में लाला मूलराजजी के नाम लिखे हुए पत्र संख्या २९१, ३०५, ३०६, ३३५ देखने योग्य हैं। पत्र-संख्या ३३५ में ऋषि लिखते हैं—

"बड़े भारी शोक की बात है आपने अब तक (लगभग १५ महीनों में) 'गोकरुणानिधि' की अंग्रेज़ी नहीं की। हमें निराश होकर यहाँ बम्बई में और लोगों से अंग्रेज़ी बनवानी पड़ी। अब आप इसमें कुछ मत बनाना।" —पत्र-व्यवहार पृ० ३२६।

'गोकरुणानिधि' के इस अंग्रेज़ी अनुवाद को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में लाला सेवकलाल कृष्णदास मन्त्री आर्यसमाज बम्बई ने स्वामीजी को २० जनवरी सन् १८८३ को इस प्रकार लिखा था—

"गोकरुणानिधि का जो अंग्रेज़ी भाषान्तर हुआ है-सो हमारा छपवाने का निश्चय है, परन्तु लाहौर में जो आर्य नामक मासिक पत्र प्रकाशित होता है उसी में छपवाकर फिर उसी का पुस्तक बनवाके छपवा देना कि जिससे इस पुस्तक के ऊपर कोई विरुद्ध वा पुष्टि में लिखे, वह भी उसी के साथ ही विवेचन होके छप सके। इस विषय में आपका क्या अभिप्राय है-सो कृपा करके लिख भेजना।"

—म० मुंशीराम संगृहित पत्र-व्यवहार पृष्ठ २७३

महर्षि के द्वारा करवाया हुआ 'गोकरुणानिधि' का अंग्रेज़ी अनुवाद उस समय प्रकाशित हुआ या नहीं, यह हमें ज्ञात न हो सका।

लाला मूलराज के अनुवाद न करने का कारण

जब लाला मूलराज ने 'गोकरुणानिधि' का अंग्रेज़ी अनुवाद १५ मास तक करके न दिया, तब अन्त में निराश होकर स्वामीजी ने उसका अंग्रेज़ी अनुवाद बम्बई में अन्य व्यक्ति से करवाया, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। 'गोकरुणानिधि' जैसे अत्यन्त छोटे ग्रन्थ के अनुवाद के लिए

१५ मास तक उन्हें समय ही नहीं मिला, यह हमारी समझ में नहीं आता।

लाला मूलराज का मांसभक्षण और उसको छिपाना

हम समझते हैं कि लाला मूलराज प्रारम्भ से ही मांसभक्षण के पक्षपाती रहे। अतएव उन्होंने 'गोकरुणानिधि'-जैसे ग्रन्थ का जो उनके विचारों से विरुद्ध था, जान-बूझकर अंग्रेज़ी अनुवाद नहीं किया और १५ मास तक स्वामीजी महाराज को अंग्रज़ी अनुवाद करने का विश्वास दिलाते रहे। लाला मूलराजजी के अनुगामी प्रायः कहा और लिखा करते हैं कि लाला मूलराजजी के मांसभक्षण-विषयक विचारों का स्वामी दयानन्द को ज्ञान था और उन्होंने जानते हुए लाला मूलराज को आर्यसमाज और परोपकारिणी-सभा का सभासद् बनाया था। हमारी सम्मति में यह कथन सर्वथा असत्य है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि लाला मूलराज अपने मांसभक्षण को अन्त तक स्वामीजी महाराज से छिपाते रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीमती परोपकारिणी-सभा की वह प्राथमिक कार्यवाही है जो अजमेर के देशहितैषी नामक मासिक पत्र खण्ड १ अङ्क १० माघ संवत् १९४० वि० में छपी है। वहाँ का लेख इस प्रकार है—

''पश्चात् श्रीयुत रावबहादुर गोपालराव हरिदेशमुखजी ने निम्नलिखित स्वामीजी का सिद्धान्त सुनाया और कहा कि इस समय दूर-दूर के स्थानों के आर्यगण उपस्थित हैं। सब कोई जान लें कि स्वामीजी का सिद्धान्त क्या था? जहाँ तक हो सके उसी के अनुसार बर्ताव करें। मन्त्रसंहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि वेद नहीं। वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं। वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है। पाषाण मूर्त्ति-पूजन वेदविरुद्ध है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ सर्वव्यापक, अजर, अमर, नित्य, पवित्र इत्यादि है, उसकी उपासना करनी योग्य है। जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो, वह धर्म नहीं। वेदों के पढ़ने का अधिकार सब वर्णों को है। कर्म और गुणों से वर्ण हैं, वीर्य से नहीं। जहाँ तक हो सके बाल-विवाह से बचकर ब्रह्मचर्य रखना, वायु की शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है। मृतकों को भोजन-छादन कदापि नहीं पहुँचता। वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देशान्तर और द्वीपान्तर की यात्रा करें। आर्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठन-पाठन रक्खें। स्वार्थसाधकों ने उनमें यत्र-तत्र जो मिला दिया हो, उसको वेदों की कसौटी से परीक्षा कर उनसे दूर करें। इसपर सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये और सबने उत्साहपूर्वक कर दिये।''

इसपर जिन १० व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किये, उनमें लाला मूलराज भी है। जब इस कार्यवाही में 'वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है' स्पष्ट घोषित किया गया, तब मांसभक्षण को वेदविरुद्ध न

माननेवाले लाला मूलराजजी को तो इसका अवश्य प्रतिवाद करना चाहिए था जब तक यह वाक्य लिखा रहे, उसपर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिएँ थे। हस्ताक्षर कर देने से स्पष्ट विदित होता है कि लाला मूलराज में स्वामीजी के सामने तो क्या उनकी मृत्यु के पश्चात् भी इतनी शीघ्र अपना विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं थी। अतएव उन्होंने बिना ननु-नच किये उसपर हस्ताक्षर कर दिये।

जिस सत्यप्रिय दयानन्द ने बम्बई के बाबू हरिश्चन्द्र और मुरादाबाद के मुंशी इन्द्रमणि-जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों को धर्मविरुद्ध आचरण करने पर आर्यसमाज से पृथक् कर दिया, थियोसोफ़िकल सोसाइटी-जैसी संस्थाओं से नाता तोड़ लिया और महाराणा उदयपुर और महाराज कश्मीर आदि की मूर्त्ति-पूजा-विषयक प्रार्थना को ठुकरा दिया, उसने लाला मूलराज को मांसभक्षी जानते हुए भी आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा का सभासद् बनाये रक्खा ऐसा भला कौन बुद्धिमान् मान सकता है?

ऐसी अवस्था में अपने वेदविरुद्ध मांसभक्षण को उचित-सिद्ध करने के लिए परम सत्यवक्ता आप्त महर्षि पर इस प्रकार का झूठा आरोप लगाना महानीचता का कार्य है। **

स्वामी विद्यानन्दजी की अन्य रचनाएँ

१. भूमिकाभास्कर (दो भाग)
२. सत्यार्थभास्कर (दो भाग)
३. संस्कारभास्कर
४. अनादितत्त्व दर्शन
५. वेद-मीमांसा
६. अध्यात्ममीमांसा (ईशोपनिषद्रहस्य)
७. तत्त्वमसि अथवा अद्वैत-मीमांसा
८. प्रस्थानत्रयी और अद्वैतवाद
९. आर्यों का आदिदेश और उनकी सभ्यता
१०. सृष्टि विज्ञान और विकासवाद
११. द्वैतसिद्धि
१२. चत्वारो वै वेदा:
१३. वेदार्थभूमिका (हिन्दी)
१४. वेदार्थभूमिका (संस्कृत)
१५. त्यागवाद
१६. स्वराज्य दर्शन
१७. राजधर्म
१८. खट्टी-मीठी यादें
१९. आर्यों का आदिदेश (१२ भाषाओं में)
२०. स्वामी विवेकानन्द के विचार
२१. मूल गीता में श्रीकृष्णार्जुन संवाद
२२. जन्म-जीवन-मृत्यु
२३. शंकराचार्यकृत परापूजा का भाष्य
२४. वाल्मीकि रामायण भ्रान्तियाँ और निराकरण
२५. आर्यसिद्धान्त विमर्श
२६. गौ की गुहार

अंग्रेज़ी में

1. The Brahmasutra
2. Vedic Concept of God
3. Theory of Reality
4. Ishopanishad—a study in Ethies and Metaphysics
5. Anatomy of Vedanta
6. Political Science
7. The Age of Shankara
8. The Riddle of Life and Death
9. Original Home of the Aryans
10. The Gospel of Swami Vivekananda
11. The Gospel of National Awakening